अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

दिसम्बर २०१८

पुनर्जन्म

विषय-सूची

पुनर्जन्म
(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय	३
शाश्वत अन्तरात्मा	५
पुनर्जन्म का उद्देश्य	११
पुनर्जन्म की प्रक्रिया	२४
पूर्वजन्मों की याद	३९

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		४५
वक़्त (कविता)	अज्ञात	४७
ऐसा दिन अवश्य आयेगा	स्व. नारायण प्रसाद 'बिन्दु'	४८
भोजन तथा वाणी	नवजात जी	४९
'नयी कोंपलें' : तुझे प्रणाम! (कविता)	मीरा शर्मा	५१
मेरा अपना पॉण्डिचेरी	निष्ठा त्यागी	५२
काश!...	त्वरा श्रीवास्तव	५४
कौन था वह...	शक्ति शर्मा	५४
कहाँ है पूर्णविराम?	वन्दना	५५
झुंझुनूं की सूचना		५८

... पिछले जन्मों को बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिये।

इस योग में महत्त्वपूर्ण है वह जो तुम हो, और उससे भी ज़्यादा जो तुम बनोगे। क्या थे इसका महत्त्व बहुत कम है।

—श्रीअरविन्द

सन्देश

अगर हम अपने अन्दर, कुछ अधिक अन्दर जायें तो हमें पता लगेगा कि हममें से हर एक के अन्दर एक चेतना है जो युगों से जीती आ रही है और विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती आ रही है। —*श्रीमाँ*

सम्पादकीय : पुनर्जन्म एक ऐसा विषय है जो आध्यात्मिक जिज्ञासु और साथ ही वैज्ञानिक को भी सोचने पर मजबूर कर देता है। सभी मृत्यु के बाद के जीवन और उसके गभीर रहस्यों के बारे में जानना चाहते हैं। मृत्यु एक ऐसा लौह द्वार है जिसके उस पार हमारी इन्द्रियों की पहुँच नहीं है। हम शरीर का अन्त होते हुए देखते हैं, लेकिन हम यह भी भली-भाँति जानते हैं कि हम मात्र शरीर नहीं, बल्कि एक जीवन्त व्यक्तित्व हैं। इसी कारण गुह्यवादी कहते हैं कि हम सब इस नश्वर शरीर में शाश्वत आत्मा हैं। वे गुह्यवादी जिन्होंने ऐसी सूक्ष्म इन्द्रियाँ विकसित कर ली हैं जो हमारे शरीररूपी भौतिक पिंजरे की सीमा के परे के जीवन से अवगत हैं, कहते हैं कि जीवन एक यात्रा है जिसे मनुष्य कई शरीरों और विभिन्न व्यक्तित्वों को धारण कर पार करता है। लेकिन इस सबका आख़िर उद्देश्य क्या है? अगर कोई उद्देश्य है... पृथिवी पर बार-बार इस मर्त्य शरीर में जन्म लेकर आने का आन्तरिक प्रयोजन क्या है? युग-युगान्तर से मानवजाति इन प्रश्नों में उलझी हुई है।

श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के प्रकाश में इन चिरस्थायी प्रश्नों का उत्तर पाने की कोशिश हम इस अंक में करेंगे। ध्यान रहे कि इस बार के कुछ लेखांश सितम्बर २०१८ में भी दिये जा चुके हैं, लेकिन वर्तमान अंक में उनकी सटीकता को देखते हुए हमने यहाँ उन्हें दोबारा जल्दी ही प्रकाशित कर दिया है।

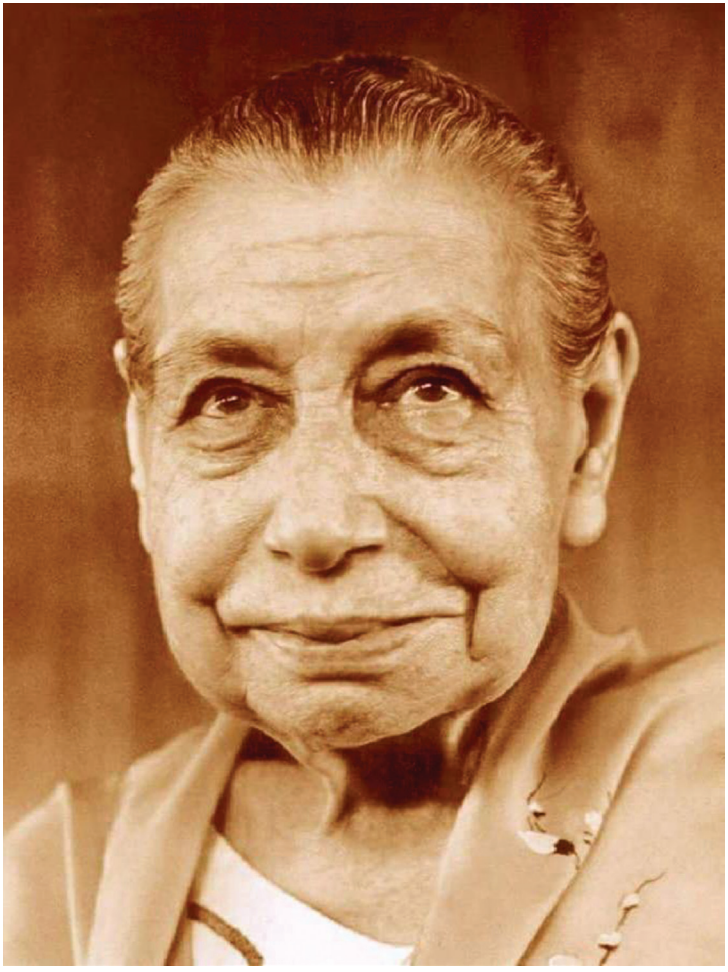

क्योंकि वह (सत्ता) मन और जीवन के कठिन श्रम को जानती है
एक माँ-समान वह अपने बच्चों के जीवनों में अनुभव ले हिस्सा बँटाती है,
इसके लिए वह अपना एक अल्पांश सामने रख देती है,
एक सत्ता जो मनुष्य के अंगुष्ठ के बराबर है
और उसके हृदय के एक गुह्य गर्भ-गृह में छिपी हुई है।
'सावित्री', पृ. ५२६ *—श्रीअरविन्द*

शाश्वत अन्तरात्मा

भगवदग्नि की चिनगारी

अन्तरात्मा को प्राण और जड़तत्त्व में भगवदग्नि की चिनगारी कहा गया है, यह एक रूपक है। इसे चेतना की चिनगारी नहीं कहा गया है।

हमारे अन्दर मानसिक, प्राणिक और भौतिक चेतना है—ये चैत्य से भिन्न हैं। चैत्य पुरुष और चेतना एक ही वस्तु नहीं हैं।

जब अन्तरात्मा अथवा "भगवदग्नि की चिनगारी" एक चैत्य व्यक्तित्व को विकसित करना आरम्भ करती है तो उस चैत्य व्यक्तित्व को चैत्य पुरुष कहते हैं।

संगठित प्राण और मन के विकास के पहले भी अन्तरात्मा या चिनगारी वहाँ रहती है। अन्तरात्मा स्वयं भगवान् का एक अंश है जो क्रमविकास के अन्दर उतरता है और उसके अन्दर वह भागवत तत्त्व है जो अज्ञान से ज्योति में होने वाले व्यक्ति के विकासक्रम को सहारा देता है। यह क्रमविकास की धारा में एक चैत्य व्यक्ति या अन्तरात्म-व्यक्तित्व को विकसित करता है जो जन्म-जन्म में वर्धित होता और विकसनशील मन, प्राण और शरीर को अपने यन्त्रों के रूप में व्यवहृत करता है। अन्तरात्मा ही अमर है जब कि बाक़ी सभी चीज़ें विघटित हो जाती हैं। अन्तरात्मा एक जीवन से दूसरे जीवन में जाती है और सार रूप में अपने अनुभव को तथा व्यक्ति के विकासक्रम की धारा को वहन करती है।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. २८९

चैत्य उपस्थिति तथा चैत्य सत्ता

ऊपर की ओर विकास के बारे में चैत्य सत्ता की जगह चैत्य उपस्थिति की बात करना ज़्यादा ठीक होगा। क्योंकि धीरे-धीरे चैत्य उपस्थिति ही चैत्य सत्ता बन जाती है। विकसित होने वाले हर आकार में यह उपस्थिति तो होती ही है, लेकिन व्यक्ति-रूप में नहीं। वह एक ऐसी चीज़ होती है जो बढ़ सकती है और विकास-क्रम की गति के अनुसार चलती है। वह ऊपर से उतरने वाला निवर्तन नहीं है। यह 'भागवत चेतना' की चिनगारी के चारों ओर क्रमशः रूप लेता है और इसका उद्देश्य होता है विकास पाती

हुई सत्ता का केन्द्र बनना जो आगे चल कर व्यक्तित्व प्राप्त करके चैत्य सत्ता का रूप ले लेता है। यही चिनगारी स्थायी होती है और अपने चारों ओर नाना प्रकार के तत्त्वों को इकट्ठा करती रहती है जिनसे व्यक्तित्व की रचना होती है; सच्ची चैत्य सत्ता तभी बनती है जब चैत्य व्यक्तित्व पूरी तरह विकसित हो जाता है और शाश्वत दिव्य चिनगारी के चारों ओर पूरी तरह से गठित हो जाता है; उसकी सम्पूर्ण पूर्णता या पराकाष्ठा तब आती है जब वह ऊपर की सत्ता या व्यक्तित्व के साथ एकता प्राप्त कर ले।...

हाँ, यह नहीं कहा जा सकता कि हर मनुष्य में चैत्य सत्ता है और इसी तरह यह भी नहीं कहा जा सकता कि सभी जानवर उससे वञ्चित हैं। बहुत-से जानवरों में, जो मनुष्य के साथ रहे हैं, चैत्य का आरम्भ दिखायी देता है और बहुत बार हमें ऐसे लोग मिलते हैं जो पशु के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। यहाँ भी, बहुत कुछ समतल किया गया है। लेकिन सब मिला कर देखें तो सच्चे अर्थों में चैत्य मानव स्तर पर ही शुरू होता है: इसीलिए कैथोलिक धर्म का कहना है कि सिर्फ़ मनुष्य में अन्तरात्मा होती है, सिर्फ़ मनुष्य में ही यह सम्भावना है कि चैत्य पूरा विकास पा सके और अन्त में ऊपर से उतरते हुए देव के साथ मिल कर एक हो सके।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १६३, ६४

चैत्य सत्ता का मूल

चीज़ें इस तरह घटा करती हैं। जड़तत्त्व में चैत्य जीवन का, दिव्य 'उपस्थिति' का मूल एक ही है, यह बात जानी हुई है, परन्तु उच्चतर जगत् में ऐसी सत्ताएँ हैं जिन्होंने पृथ्वी पर कभी शरीर ग्रहण नहीं किया है और जो यहाँ कार्य करना चाहती हैं, एक पार्थिव कर्म करना चाहती हैं। अतएव, वे तब तक प्रतीक्षा करती हैं जब तक कि कुछ चैत्य पुरुष अपनी पूर्ण विकासावस्था को नहीं प्राप्त कर लेते और उनके स्वभाव के अनुसार कोई कार्य करने के लिए उनके साथ युक्त नहीं हो जाते। उनकी चेतना पृथ्वी पर चैत्य चेतना के साथ जुड़ जाती है। ये ऐसी सत्ताएँ हैं जिन्होंने यहाँ कभी जन्म ग्रहण नहीं किया है, ऐसी सत्ताएँ जिन्होंने सृष्टि की प्रगति के साथ-साथ अपने-आपको अधिकाधिक मूर्त रूप दिया था। ये शायद प्रथम अंश-विभूति हैं, विशिष्ट कारणों से विश्व में भेजी गयी सत्ताएँ हैं—मनुष्य

जिन्हें "देव" या "अर्ध-देव" कहते हैं। अतएव, इनमें से किसी सत्ता ने, किसी विशेष कारण से, किसी आकार लेते हुए चैत्य पुरुष को चुन लिया होगा—वह उसकी सहायता करती है, उसके विकास का निरीक्षण करती है और, जब वह चैत्य पुरुष पर्याप्त रूप में तैयार हो जाता है और तादात्म्य को धारण करने के योग्य पर्याप्त शक्तिशाली बन जाता है तब वह उसके साथ युक्त हो जाती है, पृथ्वी पर कुछ काम करने के लिए उसके साथ एकात्म हो जाती है। ऐसा बहुत अधिक नहीं होता, पर ऐसा हुआ है और अब भी होता है। तुम्हें पृथ्वी पर देवताओं के अवतार लेने की कहानियाँ प्राचीन परम्पराओं में मिलती हैं; कुछ पुराण इस बात की चर्चा करते हैं। वह चीज़ किसी सत्य वस्तु से मिलती-जुलती है। परन्तु सभी चैत्य पुरुष निश्चित रूप से उच्चतर लोकों की सत्ताओं के साथ युक्त नहीं होते।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २१८-१९

चैत्य पुरुष की प्रगति

क्या चैत्य पुरुष हमेशा प्रगति करता है?

चैत्य पुरुष में दो बहुत भिन्न प्रकार की प्रगतियाँ होती हैं: एक में उसके रूप की रचना, निर्माण और संगठन होता है। क्योंकि चैत्य पुरुष सत्ता में छोटी-सी भागवत चिनगारी से शुरू होता है और इस चिनगारी में से उत्तरोत्तर एक स्वतन्त्र, सचेतन सत्ता उभरती है जिसकी अपनी क्रिया और अपनी इच्छा-शक्ति होती है। अपने मूल में चैत्य पुरुष भागवत चेतना की एक चिनगारी मात्र होता है और क्रमिक जीवनों में सचेतन व्यक्तित्व का निर्माण करता है। यह प्रगति बढ़ते हुए बच्चे की प्रगति जैसी है। यह निर्मित होती हुई वस्तु है। बहुत समय तक, अधिकतम लोगों में यह निर्मित होती हुई सत्ता ही रहता है। यह पूरी तरह व्यक्ति बनी हुई, सचेतन सत्ता नहीं होता, यह अपना स्वामी नहीं होता। इसे अपना निर्माण करने के लिए और पूरी तरह सचेतन होने के लिए एक के बाद एक बहुत सारे जन्मों की ज़रूरत होती है।

लेकिन इस प्रकार की प्रगति का एक अन्त होता है। एक ऐसा समय आता है जब सत्ता पूरी तरह विकसित हो जाती है, पूरी तरह व्यक्तित्व पा

लेती है, अपने और अपनी नियति पर प्रभुत्व पा लेती है। जब यह सत्ता या इस स्थिति का कोई चैत्य पुरुष मानव सत्ता में जन्म लेता है तो उससे बहुत फ़र्क पड़ता है : कहा जा सकता है कि वह मानव सत्ता स्वतन्त्र रूप में उत्पन्न हुई है। वह मनुष्य साधारण मनुष्यों की तरह अपनी परिस्थितियों से, अपने परिवेश से, अपने मूल और गतानुगतिकता से बँधा नहीं होता। वह धरती पर कुछ करने के उद्देश्य से आता है, कोई काम करने के लिए, कोई मिशन पूरा करने के लिए। इस दृष्टि से वृद्धि में उसकी प्रगति पूरी हो चुकी है, यानी, उसके लिए फिर से शरीर धारण करना ज़रूरी नहीं है। तब तक पुनर्जन्म आवश्यक है, क्योंकि पुनर्जन्म के द्वारा ही वृद्धि होती है; भौतिक जीवन और भौतिक शरीर में ही वह धीरे-धीरे विकसित होता है और पूरी तरह सचेतन सत्ता बनता है। लेकिन एक बार वह पूरी तरह निर्मित हो जाये तो वह स्वतन्त्र होता है, इस अर्थ में स्वतन्त्र कि वह अपनी इच्छा के अनुसार जन्म लेना चाहे तो ले, न लेना चाहे तो न ले। तो, एक प्रकार की प्रगति यहाँ रुक जाती है।

लेकिन अगर यह पूर्णतः निर्मित सत्ता भगवान् के कर्म का यन्त्र बनना चाहे, यदि चैत्य आनन्द में विश्राम करने के लिए अपने ही क्षेत्र में लौट जाने की जगह, पृथ्वी पर भगवान् के कार्य की पूर्ति के लिए कार्यकर्ता बनना चाहे, तो उसे एक नयी प्रगति करनी होती है, कार्यक्षमता में प्रगति, कार्य-संगठन में और भगवान् की 'इच्छा' को प्रकट कर सकने में प्रगति। तो एक समय ऐसा होता है जब चीज़ बदल जाती है। वह जब तक संसार में रहेगा, वह जब तक भगवान् के लिए काम करना चाहेगा, वह प्रगति करता रहेगा। लेकिन अगर वह चैत्य लोक में वापस चला जाये और 'भागवत कार्य' को जारी रखने से इन्कार करे या उसे त्याग दे, तो वह समस्त प्रगति से बाहर अचल अवस्था में रह सकता है, क्योंकि, जैसा कि मैंने तुमलोगों से कहा है, केवल यहाँ, धरती पर ही प्रगति होती है, केवल भौतिक जगत् में; यह सब जगह नहीं होती। चैत्य लोक में एक प्रकार की आनन्दमय विश्रान्ति है। तुम जो हो वही बने रहते हो, कोई गति नहीं होती।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २२५-२६

प्रगति तथा विघटन

लेकिन जो अपने चैत्य के बारे में सचेतन नहीं हैं?

वे चाहें या न चाहें, प्रगति करने के लिए बाधित होते हैं।

उनके अन्दर चैत्य पुरुष अपने-आप प्रगति करता है और इसके बारे में उन्हें पता नहीं होता। लेकिन वे अपने-आप भी प्रगति करने के लिए बाधित होते हैं। कहने का आशय यह कि वे एक चक्र का अनुसरण करते हैं। वे जीवन में एक चढ़ाई का अनुसरण करते हैं। वे उसी तरह प्रगति करते हैं जैसे एक बढ़ता हुआ बच्चा। एक समय आता है कि वे अपनी प्रगति की चोटी पर जा पहुँचते हैं और तब यदि प्रगति का स्तर न बदल जाये, शुद्ध भौतिक प्रगति मानसिक प्रगति, चैत्य प्रगति और आध्यात्मिक प्रगति में न बदल जाये, तो वह चक्र में नीचे की ओर चल पड़ता है और वहाँ विघटन होगा और उसका अस्तित्व ही न रहेगा।

चूँकि भौतिक जगत् में सतत, निरन्तर प्रगति नहीं होती इसलिए वृद्धि, पराकाष्ठा, पतन और विघटन होते हैं। क्योंकि जो चीज़ आगे नहीं बढ़ती वह पीछे गिरती है, जो कुछ प्रगति नहीं करता उसकी अवनति होती है।

तो ठीक यही चीज़ भौतिक रूप में होती है। भौतिक जगत् ने अनिश्चित रूप से प्रगति करते रहना नहीं सीखा है; वह एक बिन्दु-विशेष तक पहुँचता है, तब वह या तो प्रगति से ऊब जाता है या वर्तमान रूप में प्रगति करने में अक्षम होता है, लेकिन हर हालत में वह प्रगति करना बन्द कर देता है और कुछ समय बाद विघटित हो जाता है। जो लोग विशुद्ध रूप से भौतिक जीवन जीते हैं, वे अमुक चोटी तक पहुँच जाते हैं, फिर बहुत तेज़ी से फिसल जाते हैं। लेकिन अब, मनुष्यों में व्यापक सामूहिक प्रगति के कारण, भौतिक प्रगति के पीछे प्राणिक प्रगति और मानसिक प्रगति भी होती है। मानसिक प्रगति भौतिक प्रगति के बन्द हो जाने के बाद भी बहुत लम्बे समय तक चलती रह सकती है, भौतिक प्रगति के बन्द हो जाने के बहुत बाद भी व्यक्ति इस मानसिक प्रगति के द्वारा एक प्रकार की उन्नति जारी रखता है।

और फिर वे लोग हैं जो योग करते हैं, जो अपने चैत्य पुरुष के बारे में सचेतन होते हैं, उसके साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं, उसके जीवन में

भाग लेते हैं; वास्तव में ऐसे लोग ही जीवन के अन्तिम श्वास तक प्रगति करते रहते हैं।

वे मृत्यु के बाद भी प्रगति जारी रखते हैं, जब वे अपना शरीर त्यागते हैं तो इस कारण कि शरीर और अधिक टिक नहीं सकता: वे प्रगति करना जारी रखते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २२६-२७

शरीर में चैत्य पुरुष की उपस्थिति ही सदा संघटन और परिवर्तन का केन्द्र होती है। अतः यह मानना बड़ी भारी भूल है कि प्रगति जारी रहती है, या, जैसा कुछ लोग मानते हैं कि, दो भौतिक जन्मों के बीच के संक्रमण-काल में यह अधिक पूर्ण और द्रुत हो जाती है; साधारणतया प्रगति बिलकुल नहीं होती, क्योंकि चैत्य पुरुष विश्राम करने चला जाता है और अन्य भाग अपने-अपने लोक में क्षणिक जीवन बिता कर विलीन हो जाते हैं।

पार्थिव जीवन ही प्रगति का क्षेत्र है। यहाँ, इस धरा पर, पार्थिव जीवन की अवधि में ही प्रगति सम्भव है। अपने विकास और क्रम-विकास की स्वयं व्यवस्था करता हुआ चैत्य पुरुष ही एक जन्म से दूसरे जन्म में प्रगति को वहन करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. २९९

पुनर्जन्म का उद्देश्य

पुनर्जन्म की सच्ची नींव

पुनर्जन्म की सच्ची नींव का आधार है आत्मा का विकास, या हम कह सकते हैं जड़-भौतिक के आवरण से क्रमशः आत्मा का बाहर प्रकट होना।...

लेकिन आख़िर उस क्रमविकास का उद्देश्य क्या है? यह पुनर्जन्म की वह रूढ़िबद्ध पद्धति नहीं है कि अगर पिछले जन्म में व्यक्ति ने तथाकथित अच्छा जीवन बिताया है तो अगले जन्म में उसे उस पुण्य का पुरस्कार मिलेगा, धन-दौलत—समृद्धि से उसे मालामाल कर दिया जायेगा, बल्कि पुनर्जन्मों का सच्चा अर्थ है—भागवत ज्ञान, भागवत बल, भागवत प्रेम तथा भागवत शुद्धि की ओर निरन्तर विकास। वस्तुतः ये ही सच्चे गुण हैं और इन्हीं चीज़ों का उत्तरोत्तर पुरस्कार व्यक्ति को जन्म-जन्मान्तर मिलता रहता है। धरती पर 'प्रेम' का सच्चा पुरस्कार है—आत्मा के सर्व-आलिंगनमय और वैश्व प्रेम के परमानन्द में उत्तरोत्तर विकसित होते रहना; उचित 'ज्ञान' का सच्चा पुरस्कार है—अनन्त प्रकाश में निरन्तर वर्धित होते रहना। उचित 'शक्ति' का पुरस्कार है—भागवत शक्ति को अधिकाधिक अपने अन्दर ग्रहण करना और शुद्धि का पुरस्कार है—अपने घमण्ड से अधिकाधिक मुक्त रह कर उस निर्मल विस्तार में पहुँच जाना जहाँ सभी कुछ रूपान्तरित होकर भागवत समता में घुल-मिल जाता है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य पुरस्कार की कामना करने का अर्थ ही है, अपने-आपको मूर्खता तथा बचकाने अज्ञान से बाँध देना। साथ ही, धन-सम्पदा इत्यादि को पुण्य का प्रसाद मान लेना व्यक्ति की अपक्वता और अपूर्णता ही दर्शाता है।

रही बात जीवन में दुःख-दर्द और सुख-आनन्द की, दुर्भाग्य तथा सौभाग्य से जूझने की, तो वस्तुतः यह सब तो व्यक्ति की आत्मा के लिए एक प्रशिक्षण है जो उसे शिक्षित करता, अनुशासित करता, उसे अग्नि-परीक्षाओं की कसौटी पर कसता हुआ उसे आगे ही आगे की ओर बढ़ाता रहता है—और कभी-कभी तो समृद्धि दुःख-दर्द से कहीं अधिक बड़ी अग्नि-परीक्षा होती है। वस्तुतः, प्रतिकूलता, दुःख-दर्द कई बार पाप की सज़ा न होकर किसी गुण को उपजाने का माध्यम बन सकता है, क्योंकि

दुर्भाग्य ही मनुष्य के लिए ऐसी महानतम सहायता तथा पवित्र करने वाला यन्त्र बन सकता है जिसमें से तप कर उसकी आत्मा क्रमशः प्रकाश में उजागर होती है। दुर्भाग्य को किसी न्यायाधीश का कठोर पुरस्कार समझना या किसी चिड़चिड़े शासक का कोप मानना या फिर अशुभ का अशुभ पर ही यन्त्रवत् पलट जाना मान लेना—यह भगवान् के कार्यों को सबसे सतही दृष्टि से देखना तथा जगत् के क्रमविकास का अपमान करना होगा; क्योंकि वस्तुतः ऐसा कोई नियम नहीं है कि पिछले जन्म का दुर्भाग्य का मारा अपने अगले जन्म में सौभाग्य के बुलन्द सितारे को छुएगा... बात बस इतनी है कि जन्म-जन्मान्तरों की शृंखला पाप-पुण्य, सौभाग्य-दुर्भाग्य की कड़ियों से नहीं बनी है। वास्तव में यह शृंखला है ही नहीं... सभी सांसारिक सुख-सम्पदाएँ, कला, सौन्दर्य, शक्ति इत्यादि का बाह्य सुख-विलास तब तक अच्छे हैं जब तक हम उन्हें भौतिक जगत् पर भागवत आनन्द और भागवत कृपा का प्रवाह मानें और उनमें पूरी तरह लिप्त न होकर, अपनी आत्मा को दाँव पर लगाये बिना, उनका उपभोग कर सकें और इस तरह, हम एक-एक दीया जला कर भगवान् की इस सत्यशिवसुन्दर धरती को जन्म-जन्मान्तर का खेला न मान कर सतत प्रगति की क्रीड़ाभूमि में रूपान्तरित कर सकेंगे।

—श्रीअरविन्द के एक पत्र के आधार पर

पुनर्जन्म तथा प्रगति

उदाहरण के लिए, मान लो, चैत्य पुरुष को एक ऐसे व्यक्ति के जीवन का अनुभव हो चुका है जो एक लेखक था, जो अपनी अनुभूति को भाषणों और पुस्तकों के द्वारा अनूदित कर सकता था। इस तरह उसने, वह जिन परिस्थितियों में और जिस संसर्ग में रहता था, उसके द्वारा, अनुभूतियों का एक क्षेत्र-विशेष देख लिया है। लेकिन अनुभूति का एक और क्षेत्र है जो उसने नहीं देखा। उदाहरण के लिए, वह कहता है : "मैं अपने मस्तिष्क से जीता था, एक बुद्धिप्रधान व्यक्ति की जीवन के प्रति होने वाली प्रतिक्रियाओं को मैं देख चुका, अब मैं संवेदनों का जीवन जीना चाहता हूँ।" क्योंकि सामान्यतः बुद्धि की अत्यधिक क्रियाशीलता संवेदनों की क्षमता को बहुत कम कर देती है। अतः, अनुभूति और विकास का कोई और क्षेत्र पाने के

लिए वह बौद्धिक शिखरों को त्याग देता है। वह प्रतिभाशाली नहीं रहता, एक प्रतिभाशाली लेखक नहीं रहता। वह साधारण आदमी बन जाता है। लेकिन उसका हृदय विलक्षण होता है, बहुत दयालु और उदार। मैंने "मूढ़" कहा था पर यह एक सापेक्ष बात है। उदाहरण के लिए, यह विरल नहीं है कि एक चैत्य पुरुष प्रशासक के अधिकारों का उपभोग कर लेने के बाद (उन सब चीज़ों का जो एक राजा या सम्राट् के जीवन में मिल सकती हैं), एक अनजान जीवन में काम करना चाहे जहाँ वह सरकारी शानो शौकत की बेड़ियों से मुक्त रह सके। वह एक साधारण वातावरण में रहने वाले मध्यमवर्गीय जीवन को पसन्द कर सकता है जहाँ सामान्य अवस्थाएँ हों, ताकि वह उस प्रकार अज्ञात-सा जीवन बिता सके जिसमें वह राज्य के अध्यक्ष के साथ जुड़ी सरकारी प्रदर्शन की आवश्यकताओं से बचा रह कर काम कर सके। तुम अगर इस चीज़ को एक दृष्टिकोण से देखो तो कह सकते हो: "यह क्या? यह पतन कैसा?" यह पतन नहीं है। यह समस्या को एक और दृष्टि से, एक और दृष्टिकोण से देखना है। चेतना के लिए (मेरा मतलब है सत्य-चेतना के लिए, भागवत चेतना के लिए), सफलता और असफलता एक ही हैं, महिमा और सामान्यता एक ही हैं। महत्त्वपूर्ण है बस चेतना की वृद्धि।

और कुछ अवस्थाएँ जो मनुष्यों को बहुत अनुकूल मालूम होती हों वे चेतना के विकास की दृष्टि से बहुत प्रतिकूल हो सकती हैं...।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २९५-९६

मन, प्राण इत्यादि की प्रगति

पुनर्जन्म में बाहरी सत्ता, जो माता-पिता, परिवेश और परिस्थितियों के द्वारा बनती है—मन, प्राण और भौतिक—का दुबारा जन्म नहीं होता: केवल चैत्य सत्ता ही एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है। अतः, यह तर्कसंगत है कि न मानसिक और न ही प्राणिक सत्ता पूर्व जन्मों को याद कर सकती है, न ही इस या उस व्यक्ति के चरित्र या जीवन की पद्धति में अपने-आपको पहचान सकती है। केवल चैत्य सत्ता ही याद रख सकती है; और अपनी चैत्य सत्ता के प्रति सचेतन होकर ही हम अपने पिछले जन्मों के बारे में ठीक-ठीक जान सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, हम जो बन चुके हैं उसकी अपेक्षा हम जो बनना चाहते हैं उस पर अपनी एकाग्रता स्थिर करना हमारे लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १३७

अगर मन, प्राण और शरीर का पुनर्जन्म नहीं होता, केवल चैत्य ही फिर से जन्म लेता है तो मन, प्राण की प्रगति का अगले जन्म में कोई महत्त्व नहीं होता?

यह उसी हद तक होता है जहाँ तक कि इन भागों की प्रगति उन्हें चैत्य के निकट लाती है, यानी, जहाँ तक यह प्रगति सत्ता के इन भागों को उत्तरोत्तर चैत्य-प्रभाव में लाती है। क्योंकि वह सब जो चैत्य-प्रभाव में है और चैत्य के साथ एक हो गया है, वह बना रहता है और केवल वही बना रहता है। लेकिन, अगर चैत्य को अपने जीवन और अपनी चेतना का केन्द्र बनाया जाये और सारी सत्ता को उसी के चारों ओर संगठित किया जाये तो सारी सत्ता चैत्य-प्रभाव में आ जाती है और फिर वह बनी रह सकती है—यदि उसका बना रहना आवश्यक हो। वस्तुतः, यदि भौतिक शरीर को भी उसी प्रकार की गति दी जा सके—प्रगति की वही क्रियाएँ और आरोहण की वही क्षमता दी जा सके जो चैत्य पुरुष में है—तो उसका विघटन ज़रूरी न होगा। लेकिन वही वास्तविक कठिनाई है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ३९४-९५

प्रगति करने का प्रकृति का तरीक़ा

जो तुम कह रहे हो—मरना और फिर पैदा होना, फिर मर कर फिर जन्म लेना—वह वैयक्तिक क्रमविकास की प्रक्रिया है बशर्ते कि व्यक्ति की कोई चीज़ जीवन और मृत्यु में से होती हुई शेष बनी रहती हो, क्योंकि यदि वह सर्वथा, निःशेषतः मर जाये, निःशेषतः विघटित हो जाये तो पुनर्जन्म किसका होगा? यह आवश्यक है कि कोई चीज़ शेष बनी रहे—पुनर्जन्मों में से होती हुई शेष बनी रहे—अन्यथा वह वही व्यक्ति नहीं होगा। यदि कुछ भी शेष न रहे तो वह विकास करने वाला व्यक्ति नहीं होगा, वह 'प्रकृति'

होगी। 'प्रकृति' जड़-पदार्थ का उपयोग करती है; इस जड़-पदार्थ से वह रूपों को गढ़ती है—मैं तुम्हें यह बहुत ही सरल तरीक़े से समझा रही हूँ, फिर भी—इसके पास जड़-पदार्थ का ढेर है और उससे वह संयोजन बनाती रहती है। वह एक रूप बनाती है, वह विकसित होता है, वह विघटित हो जाता है, व्यक्ति-तत्त्व के रूप में बना नहीं रहता। वह किस कारण बना नहीं रहता? क्योंकि प्रकृति को फिर से दूसरे रूपों को बना सकने के लिए जड़-पदार्थ की, द्रव्य की आवश्यकता होती है। तो वह जो बनाती है उसे नष्ट कर देती है और फिर उसी से कोई दूसरी चीज़ बनाती है, वह इसी प्रकार जारी रखती है और यह धारा व्यक्ति की प्रगति के बिना ही अनिश्चित काल तक जारी रह सकती है : *समूची समष्टि* प्रगति करती है।

मान लो तुम्हारे पास प्लास्टिसीन है—तुम्हें प्लास्टिसीन मालूम है न, जिसके मॉडल बनाये जाते हैं? अच्छा। तुम एक रूप बनाते हो, जब बना चुकते हो तो वह तुम्हें पसन्द नहीं आता, तुम उसे तोड़ देते हो और उसकी फिर से गाढ़ी लुगदी बना कर दूसरा रूप बनाने का प्रयास करते हो। तुमने कुछ प्रगति की है, तुम प्रयास करते हो, उसे ढालते हो; तुम कहते हो : "यह सन्तोषजनक नहीं था, मैं फिर कोशिश करता हूँ," और तुम्हारा वह रूप पहले से कुछ अच्छा बनता है, पर फिर भी वह वैसा नहीं है जैसा तुम चाहते हो; इसलिए तुम उसे फिर से तोड़ देते हो, थोड़ा पानी डाल कर लुगदी बना लेते हो और दूसरा रूप शुरू करते हो। और तुम अनिश्चित काल तक यही कर सकते हो। द्रव्य सर्वदा वही एक होता है, पर अस्तित्व सदा वही एक नहीं होता, क्योंकि तुम्हारे प्रत्येक रूप का, एक रूप के तौर पर, अपना एक विशिष्ट अस्तित्व तो है, पर जिस क्षण तुम उसे तोड़ देते हो फिर वहाँ कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

तुम उस एक ही रूप को पूर्ण बनाने का प्रयास कर सकते हो या फिर दूसरे रूपों के लिए भी प्रयास कर सकते हो; उदाहरणार्थ, तुम एक कुत्ता या घोड़ा बनाने की कोशिश कर सकते हो, और यदि तुम सफल नहीं होते तो तुम दूसरा घोड़ा या कुत्ता बनाने की कोशिश कर सकते हो, परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि तुम कोई अलग ही चीज़ बनाने लगो। यदि तुम एक घर बनाओ और वह घर तुम्हें पसन्द न आये तो तुम उसे तोड़ देते हो और दूसरे ही नमूने का दूसरा घर बनाते हो, परन्तु पहले

घर की कोई चीज़ शेष नहीं रहती सिवाय स्मृति के, यदि तुम उसे बनाये रखना चाहो। इसी प्रकार, प्रकृति एकदम अचेतन और बिना आकृतिवाले बेडौल जड़-पदार्थ से शुरू करती है, फिर एक या दूसरा रूप बनाने की कोशिश करती है; केवल, हमारी तरह एक समय में एक ही चीज़ बनाने के स्थान पर, वह एक साथ लाखों चीज़ें बनाती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. २५३-५५

पूर्वजन्म की अनुभूतियों की उपयोगिता

मधुर माँ, जब कि हर नये जन्म में मन, प्राण और शरीर नये होते हैं तो पिछले जन्मों के अनुभव उनके लिए कैसे उपयोगी होते हैं? क्या हमें उन सब अनुभवों में से दोबारा गुज़रना होता है?

यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है!

जन्म-जन्मान्तरों में मन और प्राण विकास और प्रगति नहीं करते—कुछ एक विरल अपवादों को और क्रमविकास की बहुत उन्नत अवस्था को छोड़ कर—चैत्य पुरुष विकसित होता और प्रगति करता है। अतः, होता यह है : चैत्य पुरुष के क्रिया और विश्राम के काल अदल-बदल कर आते हैं; भौतिक जीवन की अनुभूतियों द्वारा, भौतिक शरीर के होते हुए सक्रिय जीवन द्वारा और मन, प्राण, शरीर के सब अनुभवों द्वारा चैत्य पुरुष प्रगति करता है; इसके बाद, साधारणतया, चैत्य पुरुष आत्मसात् करने के लिए एक प्रकार की विश्रान्ति में चला जाता है जहाँ सारे सक्रिय जीवन की अर्जित प्रगति के परिणाम का लेखा-जोखा होता है। जब यह आत्मसात्करण पूरा हो जाता है, जब वह पृथ्वी पर निवास करते हुए सक्रिय जीवन में जो प्रगति की थी उसे अपने में समा लेता है तब वह उस सारी प्रगति के फल को लिये हुए फिर से नया शरीर धारण करता है, और एक उन्नत अवस्था में तो अपने रहने के लिए परिवेश, शरीर का प्रकार और जीवन का प्रकार भी चुन लेता है ताकि अपने किसी विशेष अनुभव को पूरा कर सके। कई बहुत अधिक विकसित लोगों में तो शरीर छोड़ने से पहले ही चैत्य पुरुष यह निर्णय ले सकता है कि अगले जन्म में वह कैसा जीवन अपनायेगा।

जब वह लगभग पूरी तरह से निर्मित, काफ़ी सचेतन सत्ता बन जाता

है तो वह नयी काया की रचना की अध्यक्षता करता है और आम तौर से आन्तरिक प्रभाव द्वारा वह उन तत्त्वों और पदार्थों को चुनता है जो उसका शरीर इस तरह बनायेंगे कि शरीर नये अनुभव की आवश्यकताओं के अनुकूल बन सके। किन्तु यह तो काफ़ी उन्नत अवस्था की बातें हैं। बाद में, जब वह पूरी तरह निर्मित हो चुकता है और सेवा की भावना से, भागवत 'कार्य' में सामूहिक सहाय और सहयोग के ख़याल से धरती पर लौटता है तब वह पिछले जन्मों के प्राण और मन के अमुक तत्त्वों को इस निर्मित होती हुई काया में लाने में सफल होता है जो पिछले जन्मों में चैत्य शक्तियों द्वारा संगठित और अनुप्राणित होने के कारण सुरक्षित रहे और, फलतः, अब आम प्रगति में भाग ले सकते हैं। पर हाँ, यह होता है बहुत, बहुत उन्नत अवस्था में।

जब चैत्य पुरुष पूरी तरह से विकसित और बहुत सचेतन हो, जब वह भागवत 'संकल्प' का सचेतन यन्त्र बन जाये तो यह मन और प्राण को इस तरह संगठित करता है कि वे भी व्यापक सामञ्जस्य में भाग ले सकें और उन्हें भी सुरक्षित रखा जा सके।

विकास की समुन्नत अवस्था शरीर के विघटन के बाद भी मन और प्राण के कम-से-कम कुछ अंशों को सुरक्षित रखने की अनुमति देती है। उदाहरण के लिए : यदि, मानवीय क्रिया-कलाप में कुछ भाग—मानसिक या प्राणिक—ख़ास तौर से विकसित कर लिये गये हों तो मन और प्राण के ये तत्त्व उसी "रूप में" अक्षुण्ण बने रहते हैं—उसी क्रिया के रूप में जो पूरी तरह शृंखलित की गयी है—जैसे उच्च बौद्धिक स्तरवाले लोगों में, जिन्होंने अपने मस्तिष्क का विशेष विकास किया है, उनके व्यक्तित्व का मानसिक अंश इस रचना को बनाये रखता है और एक व्यवस्थित दिमाग के रूप में सुरक्षित रहता है जिसका अपना जीवन होता है और जिसे अगले जीवन तक रखा जा सकता है, ताकि वह अपनी सारी कमाई के साथ उसमें भाग ले सके।

कलाकारों में, उदाहरणार्थ, कुछ संगीतज्ञों में, जिन्होंने अपने हाथों का विशेषकर सचेतन रूप से प्रयोग किया है, प्राणिक और मानसिक तत्त्व हाथों के रूप में बना रहता है और ये हाथ पूरी तरह सचेतन रहते हैं, यहाँ तक कि जीवित लोगों के शरीर को भी माध्यम बना लेते हैं, यदि उनमें

विशेष सादृश्य हो—आदि-आदि।

अन्यथा, साधारण लोगों में, जिनका चैत्य पुरुष पूर्णतया विकसित और सुव्यवस्थित नहीं होता, यदि मृत्यु बहुत शान्त और आत्मसमाहित रूप में हुई हो तो चैत्य पुरुष के शरीर छोड़ने पर मानसिक और प्राणिक रूप कुछ समय तक बने रह सकते हैं। लेकिन यदि कोई अचानक, आवेश-भरी अवस्था में अनगिनत आसक्तियाँ लिये मरा हो तो, सत्ता के विभिन्न भाग बिखर जाते हैं और अपने-अपने क्षेत्र में थोड़े-बहुत समय के लिए अपना जीवन जीकर लुप्त हो जाते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. २९७-९९

क्रमविकास की आवश्यकता तथा अगला जन्म

तो क्या यह निश्चित है कि अगले जन्म में भी व्यक्ति यहाँ, यानी आश्रम में आयेगा? या किन्हीं अन्य अनुभूतियों के लिए कहीं अन्यत्र चला जायेगा?

यह पूरी तरह इस पर निर्भर करता है कि किस अवस्था में उनकी मृत्यु हुई थी और उनकी अन्तिम इच्छा क्या थी, उनके चैत्य का क्या निश्चय था। यह कोई यान्त्रिक या आरोपित चीज़ नहीं है। यह हर एक के लिए अलग-अलग है।

मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूँ कि मृत्यु के बाद की नियति के लिए, साधारणतः, चेतना की अन्तिम अवस्था सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। यानी, अगर मरते समय किसी के अन्दर यह तीव्र अभीप्सा हो कि वह लौट कर अपना काम जारी रखे, तो उसके लिए ऐसी अवस्थाओं की व्यवस्था कर दी जाती है। लेकिन, देखो, मृत्यु के उपरान्त क्या होता है इसके लिए सब प्रकार की सम्भावनाएँ हैं। ऐसे लोग हैं जो चैत्य में लौट जाते हैं। मैं तुम्हें बता चुकी हूँ कि बाहरी सत्ता का बने रहना बहुत ही विरल है; इसलिए हम केवल चैत्य चेतना की ही बात करते हैं जो हमेशा बनी रहती है। और फिर ऐसे लोग हैं जिनका चैत्य अपने भावी जीवन की तैयारी के लिए, अपने प्राप्त किये हुए अनुभवों को आत्मसात् करने के लिए चैत्य लोक में चला जाता है। इसमें सदियाँ लग सकती हैं। यह

लोगों पर निर्भर करता है।

चैत्य पुरुष जितना अधिक विकसित होगा उतना ही अपनी पूर्ण परिपक्वता के समीप होगा, उतना ही अधिक समय उसके जन्मों के बीच लगेगा। ऐसी सत्ताएँ हैं जो एक हज़ार वर्ष बाद, दो हज़ार वर्ष बाद नया जन्म लेती हैं।

व्यक्ति जितना अधिक चैत्य के निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था में होगा, उतने ही जल्दी-जल्दी उसके जन्म होंगे, और कभी-कभी, बिलकुल ही निचले स्तर पर, जब मनुष्य पशु के बिलकुल नज़दीक होता है, तो यह यूँ चलता है *(संकेत)*, यानी, लोगों के लिए यह असाधारण नहीं होता कि अपने बच्चों के बच्चे के रूप में जन्म लें, इस तरह, कुछ-कुछ इस तरह, या फिर एकदम अगली ही पीढ़ी में। लेकिन यह हमेशा विकास के बहुत प्रारम्भिक स्तरों पर होता है, जब चैत्य बहुत सचेतन नहीं होता, वह अभी निर्मित हो रहा होता है। और जैसे-जैसे वह अधिक विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे, जैसा कि मैंने कहा, उसके जन्म एक-दूसरे से ज़्यादा दूर होते जाते हैं। जब चैत्य पुरुष पूरी तरह विकसित हो जाता है, जब उसे अपने विकास के लिए फिर से धरती पर आने की ज़रूरत नहीं रहती, जब वह पूरी तरह स्वतन्त्र होता है तो उसके सामने कई विकल्प होते हैं, अगर उसे लगे कि उसका काम कहीं और है, या अगर वह शुद्ध चैत्य चेतना में, जन्म लिये बिना रहना अधिक पसन्द करे तो वह धरती पर वापस ही न लौटे; या वह जब चाहे, जैसे चाहे, जहाँ चाहे, पूर्ण सचेतन रूप में जन्म ले। और फिर ऐसे हैं जो वैश्व क्रम की शक्तियों और 'अधिमानस' की या कहीं और की सत्ताओं के साथ एक हो जाते हैं, जो हमेशा धरती के वातावरण में ही रहते हैं, और कार्य के लिए एक के बाद एक जन्म लेते ही रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि जिस क्षण चैत्य पुरुष पूर्णतया निर्मित हो जाता है और बिलकुल स्वतन्त्र होता है—जब वह पूर्णतया निर्मित हो तो वह पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाता है—तो वह जो करना चाहे कर सकता है, यह इस पर निर्भर करता है कि वह क्या चुनता है; इसलिए तुम यह नहीं कह सकते : "वह ऐसा होगा, वह वैसा होगा", वह ठीक वही करता है जो वह करना चाहे और वह शरीर की मृत्यु के समय यह घोषणा भी कर सकता है (ऐसा हो चुका है) कि उसका अगला जन्म कैसा होगा,

वह क्या करेगा, वह तभी चुन सकता है कि वह क्या करेगा। लेकिन इस स्थिति से पहले, जो बार-बार नहीं आती—वह पूरी तरह चैत्य के विकास की अवस्था और सत्ता की समग्र चेतना की सँजोयी हुई आशा पर निर्भर करता है—मानसिक, प्राणिक और भौतिक चेतना भी है जो चैत्य चेतना के साथ युक्त होती है; तो उस समय, मृत्यु की घड़ी में, शरीर त्याग के क्षण में, वह एक आशा, एक अभीप्सा, एक संकल्प सँजोती है, और साधारणतः यही अगले जीवन का निश्चय करती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ९५-९७

पुनर्जन्म तथा अन्तरात्मा का क्रमविकास

पुनर्जन्म के विषय में जो आम भ्रान्ति है उससे तुम दूर ही रहो। प्रचलित विचार तो यह है कि टाइटस बाल्बुस जॉन स्मिथ के रूप में जन्म लेता है, वही व्यक्तित्व, वही गुण, वही उपलब्धियाँ जो उसने पिछले जन्म में अर्जित की थीं। फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि अब वह चोगे के बजाय कोट-पतलून पहनता है और प्रचलित लैटिन की बजाय लन्दनी अंग्रेज़ी में बात करता है। पर ऐसा होता नहीं। आदिकाल से प्रलय तक लाखों बार उसी व्यक्तित्व और चरित्र को इस धरा पर दोहराते जाने का भला क्या लाभ! अन्तरात्मा जन्म लेती है अनुभव सञ्चय कर प्रगति करने के लिए, विकास करने के लिए, जब तक कि यह जड़-जगत् में भगवान् को नहीं ले आती। केन्द्रीय सत्ता ही पुनर्जन्म लेती है, बाह्य व्यक्तित्व नहीं—व्यक्तित्व तो सिर्फ़ एक साँचा है जिसे वह उस जीवन के अनुभवों को ढालने और रूप देने के लिए गढ़ती है। दूसरे जन्म में अपने लिए यह एक अलग व्यक्तित्व, अलग क्षमताएँ, अलग जीवन, अलग पेशा अपनायेगी। मान लो कि वर्जिल ने दोबारा जन्म लिया तो वह एक-दो और जन्मों में कविता लिखना जारी रख सकता है, लेकिन यह निश्चित है कि वह दोबारा महाकाव्य नहीं लिखेगा बल्कि कुछ सरल, कमनीय, सुन्दर से गीत लिखे जो वह रोम में लिखना चाहता था पर लिख न सका। किसी और जन्म में, हो सकता है वह कवि न ही बने बल्कि कोई दार्शनिक और योगी बने जो उच्चतम सत्य का अन्वेषी हो और उसे व्यक्त कर सके—क्योंकि अपने जीवन में यह भी उसकी चेतना का अधूरा सपना था। शायद उससे पहले वह शूर-वीर योद्धा या राजा रहा हो

जो एनियस या ऑगस्टस की शौर्यगाथा गाने से पहले उनके जैसे वीरता के कारनामे करता रहा हो। यह क्रम इसी तरह चलता रहता है—इस तरफ़ या उस तरफ़, केन्द्रीय सत्ता नया चरित्र, नया व्यक्तित्व ओढ़ती है, बढ़ती है, पनपती है, सब तरह के पार्थिव अनुभवों से होकर गुज़रती है।

जैसे-जैसे वर्धनशील सत्ता अधिकाधिक विकसित होती जाती है, वह अधिक समृद्ध और जटिल बनती जाती है, मानों अपने सारे व्यक्तित्वों को सँजोये जाती है। कभी वे सक्रिय तत्त्वों के पीछे खड़े होते हैं, इधर-उधर छिटपुट अपने रंग, अपनी विलक्षणता, अपनी क्षमता बिखेरते रहते हैं—या फिर वे सामने प्रकट होते हैं और व्यक्ति बहु-व्यक्तित्ववाला, बहु-चरित्रवाला, बहु-आयामी, कभी-कभी तो वैश्व क्षमतावाला दीखता है। लेकिन यदि पिछला व्यक्तित्व, पिछली क्षमता पूरी तरह सामने लायी जाये तो वह किये हुए काम को दोहराने के लिए नहीं होगा बल्कि उसी क्षमता को नये रूपों और आकारों में ढालने के लिए होगा और उन्हें सत्ता के नये सामञ्जस्य के साथ समरस करने के लिए होगा जो पुराने की पुनरावृत्ति नहीं होगी। अतः, योद्धा और कवि जो थे उसी की आशा तुम्हें नहीं करनी चाहिये। सतही विशेषताओं का कुछ अंश दोबारा प्रकट हो सकता है लेकिन वह नये गठन में नये रूप से ढला हुआ और बहुत बदला हुआ होगा। जो पहले नहीं किया गया उसे करने के लिए ऊर्जाओं को नये आयामों की दिशा मिलेगी।

और एक बात। पुनर्जन्म में व्यक्तित्व और चरित्र मुख्य नहीं होते—चैत्य सत्ता प्रकृति के सारे विकास के पीछे विद्यमान होती है और वही इसके साथ विकसित होती रहती है।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४३४-३५

दिव्य तत्त्व के इस मानवीय भाग के द्वारा भगवती माता
परमात्मा की महत्ता को दिक्काल में स्थापित करती हैं
जिससे ज्योति से ज्योति की ओर, शक्ति से शक्ति की ओर उन्नत करती जायें,
जब तक यह मनुज एक स्वर्गिक शिखर पर एक अधिपति-सम खड़ा न हो जाये।
'सावित्री', पृ. ५२७ *—श्रीअरविन्द*

भागवत तत्त्व आवश्यक वस्तुओं को लिये चलता है

जब चैत्य शरीर से विदा लेता है, अपने विश्राम-स्थल की ओर जाते हुए मन और प्राण की केंचुली को भी झाड़ता जाता है, उस समय, वह अपने अनुभवों का मर्म अपने साथ लेता जाता है—भौतिक घटनाएँ नहीं, प्राणिक हलचलें नहीं, मानसिक रचनाएँ नहीं, क्षमताएँ या चरित्र भी नहीं, बल्कि इनसे सीखा हुआ कुछ सारभूत सत्य ले जाता है, कह सकते हैं कुछ भागवत अंश ले जाता है जिसके लिए बाक़ी सबका अस्तित्व था। वही स्थायी जमा-पूँजी है, वही भगवान् की ओर बढ़ने में सहायक है। यही कारण है कि साधारणतया पिछले जन्मों की बाहरी घटनाओं और परिस्थितियों की स्मृति शेष नहीं रहती। इस स्मृति के लिए मन, प्राण, यहाँ तक कि सूक्ष्म शरीर की भी अविच्छिन्न शृंखला बनाये रखने के लिए बहुत प्रबल विकास की ज़रूरत है; यद्यपि यह सब कुछ स्मृति में बीज-रूप में निहित रहता है, पर साधारणतया ऊपर उभर कर नहीं आता। योद्धा की उदारता में दिव्य तत्त्व का जो भी पुट था, जिसने उसकी निष्ठा, कुलीनता और शौर्यभरे साहस में अपने-आपको व्यक्त किया, कवि के सुसमञ्जस मानसिक चिन्तन और उदार जीवट के पीछे जो कुछ भगवान् का अंश था वही बच रहता है जिसके द्वारा इसने अपने-आपको उजागर किया, और वही चरित्र के नये सुसंगठन में नया रूप पा सकता है या, यदि जीवन भगवन्मुखी हो तो उसे सिद्धि के लिए शक्तियों के रूप में लिया जा सकता है या फिर भगवान् के लिए काम करने में उसका उपयोग किया जा सकता है।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४३५-३६

चैत्य पुरुष मृत्यु के समय यह चुन लेता है कि उसे अगले जन्म में क्या सम्पन्न करना है और उसी के अनुसार वह नये व्यक्तित्व की रूपरेखा और उसकी परिस्थितियाँ निर्धारित कर लेता है।

जब तक व्यक्ति उच्चतर प्रकाश के लिए तैयार नहीं हो जाता तब तक अज्ञान की अवस्थाओं में हड़बड़ाने, अनुभव लेने और विकसनशील वृद्धि का नाम ही जीवन है।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४२८

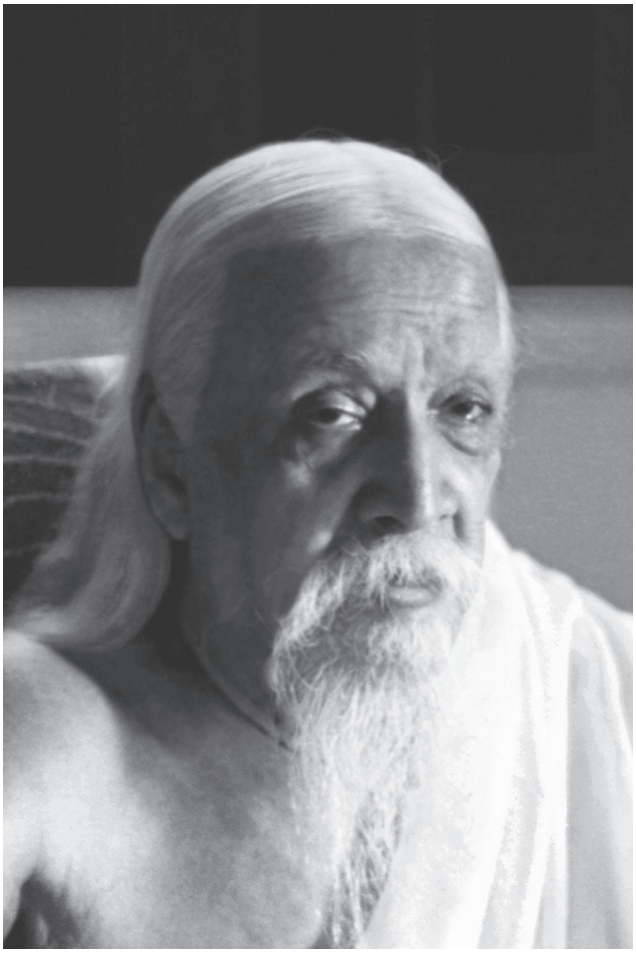

अनन्त के आकारों का यह शिल्पी,
पट के पीछे छिपा, अज्ञात यह दिव्य-वासी,
अपने अवगुण्ठित रहस्यों का आत्म-प्रणेता,
अपने विश्व-विचार को एक लघु मूक बीजमन्त्र में छिपा रखता है।

'सावित्री', पृ. २३ *—श्रीअरविन्द*

पुनर्जन्म की प्रक्रिया

पुनर्जन्म के बारे में धारणा

पुनर्जन्म के बारे में तो यह स्वीकार करना होगा कि ऐसा कोई नियम नहीं है जो सभी मामलों में लागू हो सकता हो। कुछ लोग तुरन्त दोबारा जन्म ले लेते हैं—बहुत बार यह होता है कि यदि बच्चे माता-पिता से बहुत लगाव रखते हों तो माता-पिता का एक भाग बच्चों में आ जाता है। कुछ लोग दोबारा जन्म लेने में शताब्दियाँ या सहस्राब्दियाँ लगा देते हैं। वे ऐसी आवश्यक परिस्थितियों के तैयार होने तक प्रतीक्षा करते हैं जो उनके लिए अनुकूल वातावरण बना दें। अगर कोई यौगिक दृष्टि से सचेतन हो तो वह अपने अगले जन्म के लिए शरीर तैयार कर सकता है। वह शरीर के जन्म लेने से पहले उसे आकार देता और गढ़ता है। इस तरह सचमुच तो नये शरीर का निर्माता वह स्वयं होता है, नये बच्चे के माता-पिता तो केवल संयोग और शुद्ध रूप से भौतिक निमित्त होते हैं।

साथ ही मुझे यह भी कह देना चाहिये कि पुनर्जन्म के बारे में एक सामान्य भ्रान्त धारणा होती है। लोग मानते हैं कि उनका पुनर्जन्म होता है, लेकिन यह स्पष्ट रूप से ग़लत है, यद्यपि यह ठीक है कि उनकी सत्ता के कुछ अंश औरों के साथ मिल जाते हैं और इस तरह नये शरीरों के द्वारा काम करते हैं। उनकी पूरी सत्ता का पुनर्जन्म नहीं होता और इसका कारण यह साधारण-सा तथ्य है कि जिस चीज़ को वे अपना सच्चा "मैं" समझते हैं वह सचमुच कोई वास्तविक व्यक्ति बनी हुई एक सत्ता नहीं है, बल्कि उनका बाह्य व्यक्तित्व है, ऐसा व्यक्तित्व जो बाहरी नाम और आकार से बना है। इसलिए यह कहना ग़लत है कि 'क' ने 'ख' के रूप में जन्म लिया है : 'क' का व्यक्तित्व मौलिक रूप में 'ख' से अलग है, इसलिए 'क' 'ख' के रूप में जन्म नहीं ले सकता। तुम्हारा यह कहना तभी ठीक होगा जब तुम यह कहो कि चेतना की एक ही धारा 'क' और 'ख' दोनों का अपनी अभिव्यक्ति के यन्त्र के रूप में उपयोग करती है। जो हमेशा बना रहता है वह है चैत्य पुरुष जो बाहरी व्यक्तित्व नहीं है बल्कि जो गहराई में स्थित रहता है; वह बाहरी नाम और आकार नहीं है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १५८-५९

शरीर के विघटन के बाद कुछ बचा रहता है

तुम यह जानना चाहते हो कि क्या सभी मनुष्य शरीर के विलय के बाद अपनी विशिष्टता बनाये रखते हैं? हाँ, यह कई बातों पर निर्भर करता है। साधारण लोग अपने शरीर के साथ इतने अधिक जुड़े होते हैं कि शरीर के विघटन के बाद उनमें कुछ नहीं बचता। ठीक ऐसी बात नहीं है कि उनमें से कुछ नहीं बचता—प्राण और मन का तत्त्व हमेशा बचा रहता है—लेकिन वह भौतिक व्यक्तित्व के साथ एकात्म नहीं होता। जो बच रहता है उस पर बाहरी व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप नहीं होती, क्योंकि भौतिक व्यक्तित्व आवेगों, इच्छाओं और शारीरिक कार्य-कलाप के सम्बन्ध और सहयोग से बने अस्थायी घालमेल से ही सन्तुष्ट रहता है और शरीर के कार्य-कलाप के बन्द होने के साथ ही स्वाभाविक रूप से यह ऊपरी एकता भी समाप्त हो जाती है। हाँ, यदि विभिन्न भागों पर मानसिक संयम रहा हो और उन्हें किसी समान मानसिक आदर्श के अधीन रखा गया हो तो एक प्रकार का सच्चा व्यक्तित्व बना रह सकता है जिसमें पार्थिव जीवन की स्मृति सचेतन रूप से बनी रह सकती है। कहा जा सकता है कि कलाकार, दार्शनिक तथा अन्य विकसित लोग, जो अपने प्राण को एक हद तक परिवर्तित कर लेते हैं और अपने व्यक्तित्व को संगठित बना लेते हैं, वे बचे रहते हैं, क्योंकि वे अपनी बाहरी चेतना में अपनी चैत्य सत्ता की कुछ छाया ले आते हैं। चैत्य सत्ता स्वभाव से ही अमर है और उसका लक्ष्य है क्रमशः सारी सत्ता का, केन्द्रीय 'भागवत संकल्प' के चारों ओर निर्माण करना।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १५९-६०

सब कुछ मूल उद्‌गम पर निर्भर करता है

पूर्वजन्मों के विषय में क्या कोई सामान्य नियम, मोटी रूपरेखा है या सब कुछ सम्भव है?

सब कुछ निर्भर करता है उस श्रेणी पर जिससे मनुष्य सम्बन्ध रखता है, और फिर चैत्य पुरुष के विकास की मात्रा पर। यदि चैत्य पुरुष किसी उन्नत अवस्था में हो, लगभग प्रौढ़ावस्था में हो, तो मृत्यु से पूर्व का चुनाव, जिसके विषय में मैंने उस दिन तुमलोगों से कहा था, बिलकुल सच्चा होता

है और इस चुनाव का अर्थ है कि सब कुछ सम्भव है; परन्तु दूसरे प्रसंगों में, पुनर्जन्म लगभग अपने-आप घटित होता है। चैत्य पुरुष का संकल्प विकसित नहीं हुआ होता और वह चुनाव नहीं करता। अतएव, उस विषय में कोई नियम नहीं है। यह बहुत कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करता है, विशेषकर रूपनिर्माण की धारा पर जिसका अनुसरण चैत्य पुरुष करेगा, और वह निर्भर करता है उसके मूल उद्‌गम पर। इस विषय में कुछ कहना कठिन है। लिंगभेद का जहाँ तक प्रश्न है, वह बहुत दीर्घकाल तक बदलता रह सकता है। जैसे-जैसे चेतना वर्धित होती है और कर्म की, चेतना की कुछ एकता प्राप्त कर लेती है तो वह एक धारा को छोड़ कर दूसरी का अनुसरण करने का चुनाव कर सकती है; परन्तु इस चुनाव से पूर्व, असंख्य जन्मों में तुम निस्सन्देह विभिन्न योनियों (कभी पुरुष-योनि, कभी नारी-योनि) में रहे हो। सम्भवतः यही कारण है कि कुछ स्त्रियों में पुरुष-स्वभाव और कुछ पुरुषों में नारी-स्वभाव, अथवा अपने लिंग के विपरीत प्रवृत्तियाँ होती हैं। परन्तु "चुनाव" के समय कोई सृजनात्मक 'चेतना' अथवा निश्चल 'साक्षी' से सम्बन्धित रहने का निर्णय कर सकता है। यह निर्भर करता है मूल उद्‌गम पर।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २१७-१८

अन्तरात्मा के आविर्भाव का समय और प्रक्रिया

मैं कह सकती हूँ कि मैंने जन्म लेने की तैयारी करने वाली या जन्म ले चुकी सत्ताओं के अन्दर विकसित आत्माओं के अनेकों जन्मों को देखा है। जैसा कि मैं कह चुकी हूँ, सभी दृष्टान्त एकदम भिन्न होते हैं; यह बात भौतिक अवस्थाओं की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं पर अधिक निर्भर करती है, पर यह भौतिक अवस्थाओं पर भी निर्भर करती है। यह उस अन्तरात्मा के विकास की अवस्था पर निर्भर करती है जो जन्म लेना चाहती है—हम यहाँ "अन्तरात्मा" शब्द को चैत्य सत्ता के अर्थ में लेते हैं, जिसे हम चैत्य सत्ता या पुरुष कहते हैं—यह उसके विकास की अवस्था पर निर्भर करती है, उन परिस्थितियों पर निर्भर करती है जिनमें वह जन्म लेने जा रही है, उस कार्य पर निर्भर करती है जो उसे पूरा करना है—यह चीज़ बहुत-सी विभिन्न स्थितियों को उत्पन्न करती है...। यह माता-पिता

की चेतना की अवस्था पर तो बहुत ही अधिक निर्भर करती है। कारण, यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इच्छापूर्वक, सचेतन अभीप्सा के साथ, अदृश्य जगत् के प्रति एक पुकार के साथ तथा आध्यात्मिक लगन के साथ बच्चा उत्पन्न करने तथा आकस्मिक रूप में उसे बिना चाहे, कभी-कभी तो एकदम अनिच्छापूवर्क बच्चा उत्पन्न करने में बहुत अधिक अन्तर है। मैं यह नहीं कहती कि इस दूसरी अवस्था में चैत्य सत्ता जन्म नहीं ले सकती, किन्तु सामान्यतया यह बच्चे में बाद में आती है, गर्भाधान के समय नहीं आती।

बच्चे के गठन में इससे बहुत अधिक अन्तर आ जाता है।

यदि जन्म लेने वाली आत्मा गर्भाधान के समय प्रविष्ट हो जाये तो जो बच्चा जन्म लेगा उसकी सारी रचना ही उस चेतना से निर्धारित और शासित होगी जिसे जन्म लेना है : तत्त्वों का चुनाव, सार-वस्तु का आकर्षण —शक्तियों का तथा यहाँ तक कि आत्मसात् की हुई वस्तुओं के सार-तत्त्व का भी चुनाव—सब उस चेतना के द्वारा ही किया जाता है। एक चुनाव तो वहाँ पहले से ही हो चुका होता है। और यह स्वभावतः ही उस शरीर की रचना के लिए बिलकुल विशिष्ट प्रकार की अवस्थाएँ उत्पन्न कर देता है जो अपने जन्म के पूर्व ही काफ़ी विकसित, उन्नत और सुसमन्वित हो सकता है। मैं यहाँ यह भी बता दूँ कि यह एक बहुत ही, बहुत ही असाधारण बात है; किन्तु फिर भी ऐसा होता है।

ऐसे उदाहरण अधिकतर होते हैं जहाँ ठीक जन्म के समय, अर्थात्, गर्भ से मुक्त होने के सबसे पहले संकेत के समय, जब कि शिशु यथाशक्ति रोकर अपने फेफड़ों को विकसित करना आरम्भ करता है, उस समय, बहुत बार, जीवन की इस प्रकार की पुकार चैत्य अवतरण को अधिक सरल और सफल बना देती है।

कभी-कभी तो बहुत दिन और कभी महीने निकल जाते हैं, तैयारी धीमी होती है और प्रवेश क्रमशः, बड़े सूक्ष्म और प्रायः अदृश्य तरीक़े से होता है।

कभी-कभी ऐसा बहुत बाद में होता है, जब कि स्वयं बच्चा कुछ सचेतन हो जाता है और किसी ऊपर की, बहुत ऊपर की वस्तु के साथ एक बहुत सूक्ष्म, किन्तु बहुत सच्चा सम्बन्ध अनुभव करता है, जो एक प्रभाव के रूप में उस पर दबाव डालती है; और फिर बच्चा स्वयं उस वस्तु के साथ सम्बन्ध बनाये रखने की आवश्यकता अनुभव करने लग सकता है, जिसे

न वह जानता है, न समझता है पर जिसे वह केवल अनुभव करता है; और यह अभीप्सा चैत्य पुरुष को आकर्षित करती और बच्चे के अन्दर उसे अवतरित कराती है।

मैं यहाँ तुम्हें वे ही दृष्टान्त दे रही हूँ जो प्रायः देखने में आते हैं। और भी बहुत-से दृष्टान्त हैं; ऐसा अलग-अलग अनगिनत तरीक़ों से हो सकता है। परन्तु जो मैंने तुम्हें बताये हैं उन्हें मैंने बहुत बार होते हुए देखा है।

अतएव, जो अन्तरात्मा जन्म ग्रहण करना चाहती है, वह अपने भावी आवास का चुनाव कर लेने के बाद, कभी-कभी पृथ्वी के एकदम समीप, उच्चतर मन के किसी क्षेत्र में स्थित हो जाती है; या फिर वह और नीचे प्राण में भी उतर सकती है, और वहाँ से अधिक सीधे तौर पर कार्य करती है; या फिर से सूक्ष्म-भौतिक स्तर में भी प्रवेश कर सकती है और तब बहुत समीपवर्ती स्थानों से अपने भावी शरीर के विकास-कार्य को सञ्चालित कर सकती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ४००-०२

चैत्य अपने अगले जीवन का निश्चय कर लेता है

एक दिव्य स्फुलिंग का उदाहरण लें जो आकर्षण, आन्तरिक सादृश्य और चुनाव के अनुसार अपने चारों ओर चैत्य चेतना की प्राथमिक अवस्था को संघटित करना आरम्भ करता है (यह कार्य पशुओं में ख़ूब स्पष्ट रूप में दिखायी देता है—ऐसा मत समझो कि तुमलोग असाधारण जीव हो और केवल तुम्हारे अन्दर ही चैत्य पुरुष है और बाक़ी सारी सृष्टि इससे रहित है! इसका प्रारम्भ खनिज पदार्थों से हो जाता है, यह पौधों में कुछ अधिक विकसित होता है और पशुओं में चैत्य उपस्थिति की प्रथम चमक दिखायी देती है)। फिर एक समय ऐसा आता है जब यह चैत्य पुरुष पर्याप्त मात्रा में विकसित हो जाता है और उसकी एक स्वतन्त्र चेतना तथा उसका एक व्यक्तिगत संकल्प होता है। उसके बाद कम या अधिक व्यक्तिभावापन्न अनगिनत जीवनों को बिताने के बाद वह अपने विषय में सचेतन होता है, अपनी गतिविधियों तथा उस परिपार्श्व का ज्ञान प्राप्त करता है जिसे उसने अपने विकास के लिए चुना है। ज्ञान की एक विशेष स्थिति में आकर वह निर्णय करता है—साधारणतया जिस जीवन को वह अभी पृथ्वी पर बिता

चुका है उसके अन्तिम क्षणों में वह निश्चय करता है—कि वह अब अगले जीवन को किन अवस्थाओं में बितायेगा। यहाँ मैं तुम्हें एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात बतला देना चाहती हूँ, वह यह कि चैत्य पुरुष केवल भौतिक जीवन में और पृथ्वी पर ही प्रगति कर सकता और अपना गठन कर सकता है। जैसे ही वह एक शरीर छोड़ता है, वह विश्रामावस्था में चला जाता है जो उसके अपने चुनाव तथा अपने विकास की मात्रा के अनुसार कम या अधिक दीर्घकाल तक बनी रहती है—वह विश्राम होता है आत्मसात् करने के लिए, मानों निष्क्रिय प्रगति के लिए, ऐसे निष्क्रिय विकास के लिए जो उस चैत्य पुरुष को नवीन अनुभूतियों की ओर जाने तथा अधिक सक्रिय उन्नति करने का अवकाश प्रदान करता है। एक जीवन समाप्त करने के बाद (जो जीवन सामान्यतया तब तक समाप्त नहीं होता जब तक कि वह अपने अभीप्सित कार्य को पूरा नहीं कर लेता), वह उन परिस्थितियों को चुनता है जिनमें वह फिर जन्म लेगा, लगभग उस स्थान को चुन लेता है जहाँ वह पैदा होगा, उन अवस्थाओं तथा जीवन के उस स्वरूप को निश्चित करता है जिसमें वह पैदा होगा और अनुभूतियों का एकदम ठीक-ठीक क्रम निर्धारित कर लेता है जिसमें से वह अपनी इच्छा के अनुसार प्रगति करने के लिए गुज़रना चाहता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १७०-७१

क्या चैत्य सत्ता में लिंग-भेद होता है

'क्ष' ने मुझसे पूछा कि क्या पुनर्जन्म के समय कोई स्त्री पुरुष के रूप में जन्म ले सकती है और कोई पुरुष स्त्री के रूप में? उसका मानना है कि वह अपने अन्दर कुछ स्त्रियोचित लक्षण देखता है जो उसके इस कथन की पुष्टि करता है। मैं भी यह जानना चाहता हूँ कि क्या स्वयं चैत्य सत्ता में लिंग-भेद होता है?

ठीक लिंग-भेद तो नहीं लेकिन पुंस-तत्त्व और स्त्री-तत्त्व तो हैं चैत्य पुरुष में। पुनर्जन्म में लिंग बदलता है कि नहीं यह कहना मुश्किल है। पुनर्जन्म किन्हीं लीकों का अनुसरण करता है और मेरा अपना अनुभव और अन्य लोगों के अनुभव तो यही कहते हैं कि वह प्रायः एक ही लीक का

अनुगामी होता है। लेकिन लिंग-परिवर्तन को असम्भव घोषित नहीं किया जा सकता। कुछ ऐसे हो सकते हैं जो बदलते हैं। किसी पुरुष में स्त्री-गुणों के विद्यमान होने से यह ज़रूरी नहीं कि पिछले जन्म में वह स्त्री था—वे गुण शक्तियों की क्रीड़ा और उनकी संरचनाओं के फलस्वरूप आ सकते हैं। फिर कुछ गुण तो दोनों लिगों में समान होते हैं। यह भी हो सकता है कि मानसिक व्यक्तित्व का कोई भाग अपने से इतर व्यक्ति के साथ जुड़ जाये। पूर्व जन्म के किसी व्यक्ति के लिए कोई कह सकता है कि "वह मैं नहीं था, लेकिन मेरे मानसिक व्यक्तित्व का एक अंश उसमें विद्यमान था।" पुनर्जन्म बड़ा जटिल व्यापार है। इसकी प्रक्रिया उतनी आसान नहीं है जितनी लोग समझते हैं।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४३१-३२

मरते हुए मनुष्य की इच्छा

मरते हुए मनुष्य की इच्छा बाहरी सतह की चीज़ होती है—यह चैत्य द्वारा निश्चित हो सकती है, अतः भावी को रूप देने में सहायक हो सकती है, लेकिन यह चैत्य के चुनाव को निर्धारित नहीं करती। वह परदे के पीछे रहता है। बाहरी चेतना की क्रिया आन्तरिक प्रक्रिया का निर्धारण नहीं करती, बल्कि इससे ठीक उलटा होता है। फिर भी, कभी-कभी आन्तरिक क्रिया के कुछ संकेत या अंश ऊपरी सतह पर उभर आते हैं, जैसे मरते समय कुछ लोगों के सामने अपने अतीत का दर्शन या परिस्थितियों का स्मरण एक विराट् चलचित्र की तरह घूम जाता है। यह होता है विदाई से पहले का जीवन के बारे में चैत्य का पुनरावलोकन।

बँधी-बँधायी यान्त्रिक क्रिया नहीं

मृत्यु के समय चैत्य सत्ता का चुनाव अगले व्यक्तित्व के निर्माण को निष्पन्न नहीं करता, बल्कि निर्धारित करता है। जब यह चैत्य जगत् में प्रवेश करती है, यह अपने अनुभव के सार को आत्मसात् करने लगती है और उस आत्मसात्करण द्वारा तथा उस पूर्व निर्धारण के अनुसार भावी चैत्य-व्यक्तित्व का गठन होता है। जब यह आत्मसात्करण पूरा हो जाता है तब यह नये जन्म के लिए तैयार होती है—लेकिन कम विकसित लोग यह

सारी क्रिया स्वयं नहीं करते, उच्चतर लोक की सत्ताओं और शक्तियों को सौंपा गया काम है यह। और जन्म ले लेने पर इसे यह विश्वास नहीं होता कि भौतिक जगत् की शक्तियाँ इसके मनचाहे रास्ते में आड़े नहीं आयेंगी—सम्भव है कि इसका नया माध्यम इस प्रयोजन के लिए काफ़ी सशक्त न हो; क्योंकि यहाँ इसकी अपनी ऊर्जाओं और वैश्व शक्तियों का परस्पर प्रभाव और प्रवाह रहता है। निराशा, भटकन या आंशिक परिपूर्ति—बहुत कुछ घट सकता है। यह सब बँधी-बँधायी यान्त्रिक क्रिया नहीं है, यह तो जटिल और दुरूह शक्तियों का परिणाम है। फिर भी, इतना जोड़ा जा सकता है कि एक विकसित चैत्य पुरुष इस सारे संक्रमण में ज़्यादा सचेतन होता है और इस सारी क्रिया का अधिकांश स्वयं कर लेता है। अवधि निर्भर करती है व्यक्ति-व्यक्ति के विकास और उसके गतिछन्द पर—कुछ लोग लगभग तुरन्त जन्म ले लेते हैं, और कुछ थोड़े समय के अन्तराल से; कुछ को शताब्दियाँ लग सकती हैं। यहाँ भी, यदि चैत्य पुरुष यथेष्ट विकसित हो तो यह अपने गतिछन्द और अपने अन्तराल को चुनने में स्वतन्त्र होता है।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४२८-२९

कर्म के सामान्य सिद्धान्त

प्रचलित सिद्धान्त बहुत यान्त्रिक हैं—पुण्य और पाप और अगले जीवन में उनके फल की धारणा के बारे में भी यही कहा जा सकता है। विगत जन्मों में किये गये प्रयत्नों के परिणाम अवश्य होते हैं, लेकिन उस बचकाने सिद्धान्त के आधार पर नहीं। उस दकियानूसी सिद्धान्त के अनुसार किसी भले आदमी के इस जन्म के दुःख-कष्ट प्रमाणित करते हैं कि वह पिछले जीवन में बहुत बड़ा दुष्ट और बदमाश था; कोई दुष्टात्मा यदि इस जीवन में फलता-फूलता है तो वह इस बात का प्रमाण है कि पिछले पार्थिव जीवन में वह देवसदृश था जिसने अपने सद्गुणों और सत्कर्मों की फसल बोयी थी जिससे अब वह सद्भाग्य की भरी-पूरी फसल काट रहा है। कितना काटा-तराशा हुआ, पर सच्चाई से दूर! क्योंकि जन्म का अभिप्राय ही है अनुभव द्वारा बढ़ना, अतः विगत कर्मों के जो भी परिणाम सामने आते हैं वे व्यक्ति के सीखने और प्रगति करने के लिए आते हैं, भूतकाल में हुई कक्षा के अच्छे बच्चों के लिए मिठाई और दुष्टों की पिटाई की तरह नहीं।

अच्छाई और बुराई के परिणाम हमें सौभाग्य और दुर्भाग्य के रूप में नहीं मिलते, बल्कि इस रूप में मिलते हैं कि अच्छाई हमें परा प्रकृति की ओर ले जाती है जो दुःख-कष्ट से अतीत होती है और बुराई अपरा प्रकृति की ओर जो सदा दुःख और विपत्ति के घेरे में घूमती रहती है।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४२९

चैत्य जगत् में आत्मसात्करण

शरीर छोड़ने के बाद जब तक चैत्य पुरुष अपने अस्थायी कोषों को उतार नहीं फेंकता तब तक वह अनेक स्थितियों और लोकों के बीच से गुज़रता हुआ यात्रा करता है। फिर यह चैत्य जगत् में पहुँचता है जहाँ अगला जन्म लेने की तैयारी तक एक तरह की निद्रा में आराम करता है। अन्त में मनुष्य-जीवन के अनुभवों का जितना अंश चैत्य अपने साथ रखता है वह उन सब अनुभवों का सार होता है और अगले विकास के लिए उपयोगी भी। प्रायः ऐसा ही होता है, लेकिन कुछ अपवाद भी हैं। यह नियम उन पर लागू नहीं होता जो सामान्य मानव स्तर से ऊपर उठ चुके हैं और एक महत्तर चेतना प्राप्त कर चुके हैं। (अगले जन्म में) चैत्य पुरुष (चैत्य सत्ता) अवर योनि में नहीं आता, यह तो जन्म लेने वाले जीव का कोई भाग होता है, प्रायः प्राणिक भाग, जो किसी कामना, लगाव या कोई विशेष अनुभव लेने के लिए ऐसा करता है। ज़्यादातर सामान्य मनुष्य के साथ ऐसा ही घटता है।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४२०

नये जीवन की तैयारी

शरीर छोड़ने के बाद, अन्य जगतों के कुछ अनुभव लेने के बाद आत्मा अपने मानसिक और प्राणिक कोषों को उतार फेंकती है और अपने अतीत के सार को आत्मसात् करने और नये जीवन की तैयारी करने के लिए विश्राम करने चली जाती है। यह तैयारी ही नये जीवन की परिस्थितियाँ निर्धारित करती है और नये व्यक्तित्व के निर्माण के लिए इसके पदार्थों के चुनाव में आत्मा को दिशा-ज्ञान देती है।

दिवंगत आत्मा अपने अतीत के अनुभवों को केवल सार-रूप में ही

याद रखती है, विस्तार-रूप में नहीं। यदि कभी आत्मा नये जन्म के लिए आवश्यक विगत व्यक्तित्व या व्यक्तित्वों को वापस लाती है तभी शायद वह अपने पूर्व जीवन के ब्योरों को याद रखती है, नहीं तो, सिर्फ़ योगदृष्टि से ही उनकी याद आती है।

(आत्मा के क्रमविकास में) कभी-कभी गतियाँ उलटी आती हुई-सी दीखती हैं पर वे केवल टेढ़ी-मेढ़ी गतियाँ होती हैं, असली अवपतन नहीं —जो कुछ करने से छूट गया हो उसे फिर से पूरा और अच्छा करने के लिए प्रत्यागमन। आत्मा वापस पशु-जगत् में नहीं लौटती; लेकिन प्राणिक व्यक्तित्व का कोई भाग अलग होकर अपनी पाशविक वृत्तियों को पूरा करने के लिए पशु-योनि में जा सकता है।

आम मान्यता है कि लोभी आदमी साँप बनता है, पर यह सच नहीं है। ये प्रचलित रूमानी अन्धविश्वास हैं।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४१९-२०

विशेष क्षमताएँ अगले जन्म में भी बनी रह सकती हैं

क्या ये सत्ताएँ जो अपने-आपको अभिव्यक्त करना चाहती हैं, फिर से जन्म लेने पर भी वही इच्छाएँ रखती हैं?

नहीं, यह एक ही बात नहीं है। यह पूरी सत्ता नहीं होती, यह तो वह विशेष क्षमता होती है जो धरती के वातावरण में बनी रहती है, इसे छोड़ कर चली नहीं जाती। वह अपने-आपको अभिव्यक्त करना जारी रखने के लिए धरती के वातावरण में रहती है। लेकिन चैत्य पुरुष चैत्य लोक को लौट सकता है और चैत्य पुरुष ही नया शरीर धारण करता है। उस दिन मैंने तुम्हें बताया था कि बहुधा शरीर छोड़ने से पहले चैत्य पुरुष निश्चय कर लेता है कि उसका अगला जन्म कैसा होगा, वह कैसे वातावरण में जन्म लेगा और वह क्या काम करेगा, क्योंकि उसे अपने अनुभव के लिए एक विशेष क्षेत्र की ज़रूरत होती है। अतः यह हो सकता है कि एक बहुत बड़े लेखक और बहुत बड़े संगीतज्ञ अगली बार एकदम मूढ व्यक्ति में जन्म लें। और तुम कहते हो: "क्या? नहीं, यह सम्भव नहीं है!" स्वाभाविक है कि हमेशा ऐसा नहीं होता, लेकिन ऐसा हो सकता है। एक ऐसा उदाहरण

है जिसमें इससे उलटी बात हुई थी। एक वायलिन बजाने वाला था, अपनी शताब्दी का सबसे अच्छा वादक... *(माताजी नाम याद करने की कोशिश करती हैं)* ज़रा ठहरो, मुझे उसका नाम मालूम था पर वह चला गया—वह वापस आया और फिर चला गया। क्या नाम था उसका?... यसाई! वह बेलजियमवासी वायलिन वादक था, सचमुच अपने समय का सबसे अद्‌भुत वादक। उस आदमी के अन्दर निश्चित रूप से बीथोवन ने ही जन्म लिया था। शायद उसकी समस्त चैत्य सत्ता का जन्म न हो, लेकिन हर हालत में उसकी संगीत की क्षमता तो उसमें जन्मी ही थी। उसकी शक्ल, उसका सिर बीथोवन से मिलता था। मैंने उसे देखा था, मैंने उसका संगीत सुना था (मैं उसे जानती न थी, मैं कुछ नहीं जानती थी, मैं पैरिस की एक संगीत-गोष्ठी में थी जहाँ 'डी मेजर' में संगीत-रचना सुनायी जा रही थी)। मैंने उसे बजाने के लिए मञ्च पर आते देखा, मैंने कहा: "आश्चर्य है! यह आदमी बीथोवन से कितना मिलता है! यह तो बीथोवन की पूरी अनुकृति है।" और संगीत शुरू हुआ। वायलिन के गज़ के चलते ही, तीन, चार स्वरों में ही... सब कुछ बदल गया। सारा वातावरण बदल गया। सब कुछ पूर्णतया अद्‌भुत बन गया। तीन ही स्वरों में... इतनी शक्ति, इतनी महिमा, सब कुछ अद्‌भुत था। कोई हिला तक नहीं। सब स्तब्ध प्रतीक्षा में थे। और वह आदि से अन्त तक ऐसे विलक्षण और अनोखे ढंग से, ऐसी समझ के साथ बजाता गया जैसी मैंने और किसी के अन्दर नहीं देखी। और तब मैंने देखा कि बीथोवन की संगीत-प्रतिभा उसमें थी...। लेकिन शायद बीथोवन के चैत्य पुरुष ने कहीं किसी मोची के यहाँ या किसी और के यहाँ जन्म लिया हो—पता नहीं! वह किसी और प्रकार का अनुभव लेना चाहता था।

मैंने इस आदमी के अन्दर जो संरचना देखी वह पार्थिव लोक की थी, वह मानसिक प्राण था; और चूँकि बीथोवन ने अपने समस्त मन, प्राण और शरीर को अपनी संगीत-प्रतिभा के चारों ओर संगठित कर रखा था इसलिए यह अपने रूप में बना रहा। वह एक जीवित वस्तु के रूप में था और जैसा-का-वैसा इस मनुष्य में पैदा हुआ था। किन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि बीथोवन का चैत्य भी आया हो। पहले जन्म में बीथोवन के चैत्य ने उन अन्य सत्ताओं को गढ़ा था, उन सब भागों को संगीत-प्रतिभा के

चारों ओर संगठित किया था; लेकिन उसकी मृत्यु के बाद, यह नहीं कहा जा सकता कि चैत्य पुरुष वहाँ रहा या नहीं; सामान्य नियम के अनुसार वह चैत्य लोक को लौट गया होगा। लेकिन यह रचना जो बन गयी थी, उसका अपना जीवन था, वह स्वतन्त्र रूप से अपने-आपमें जीवित थी। वह एक अमुक प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए बनी थी और वह अपने-आपको अभिव्यक्त करने के लिए बनी रही। और जैसे ही उसे कोई उपयुक्त यन्त्र मिला, वह अपने-आपको अभिव्यक्त करने के लिए उसमें प्रविष्ट हो गयी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २८९-९१

पुनर्जन्म तथा पिछले जन्म की यादों के बारे में

जिस चीज़ को सामान्यतः पुनर्जन्म कहा जाता है उसकी समस्या को ठीक तरह समझने के लिए तुम्हें देखना चाहिये कि ऐसी दो बातें हैं जिन पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। पहली बात है, भागवत चेतना की धारा जो ऊपर से अभिव्यक्त होने की कोशिश में है और इस जगत् में, जो उसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र है, किन्हीं रूपों की शृंखला को समर्थन देती है। दूसरी है, चैत्य चेतना जो नीचे से ऊपर की ओर चढ़ती है। यह समय में विकसित होते हुए भागवत तत्त्व का बीज है और तब तक ऊपर उठता रहता है जब तक कि ऊपर से उतरने वाली 'शक्ति' के साथ उसका मेल न हो जाये और वह अतिमानस 'सत्य' की छाप न पा ले। यह चैत्य चेतना, मनुष्य की आन्तरिक सत्ता है, वह तत्त्व है जिसमें से, जब उसकी अभीप्सा के उत्तरस्वरूप अतिमानस उसे एक सुसंगत व्यक्तित्व देने के लिए नीचे उतरे तो, उसकी सच्ची अन्तरात्मा या जीव गढ़ा जा सकता है। मनुष्य का बाहरी व्यक्तित्व एक मरणशील रचना है जो वैश्व प्रकृति के तत्त्वों से—मन, प्राण, शरीर से—बनी है और सब प्रकार की शक्तियों के परस्पर-प्रभाव का क्षेत्र है। चैत्य पुरुष मानों विभिन्न रचनाओं के पीछे रहते हुए उनके अनुभवों के सार-तत्त्व को ग्रहण करता रहता है। वह उन जीवनों की पृष्ठभूमि तो बनाता है परन्तु सतत सम्पर्क न रहने के कारण उनकी पूरी स्मृति नहीं रखता। इसलिए केवल चैत्य पुरुष के साथ सम्पर्क बना कर पिछले जन्मों की बातें याद नहीं की जा सकतीं: जो बातें पिछले जन्मों की स्मृति के नाम से चल जाती हैं उनमें या तो जान-बूझकर धोखेबाज़ी होती है या

अन्दर से प्राप्त, इधर-उधर छिटके संकेतों के आधार पर बनी हुई कहानी। बहुत से लोग अपने पशु-जीवन को भी याद रखने का दावा करते हैं और कहते हैं : वे धरती के इस या उस भाग में रहने वाले अमुक बन्दर थे। लेकिन अगर कोई बात निश्चित है तो यही कि बन्दर का चैत्य चेतना के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता इसलिए वह अपने अनुभवों को लेश मात्र भी आगे नहीं बढ़ा सकता। उसके बाहरी कपि-स्वभाव के संस्कार उसके पशु-शरीर के साथ ही झड़ जाते हैं : उन्हें जानने का दावा करना विचारणीय समस्या से सम्बद्ध वास्तविक तथ्यों के बारे में अपना अत्यन्त स्थूल अज्ञान प्रकट करना है। मानव जीवन के बारे में भी निश्चित स्मृति तभी रहती है जब चैत्य पुरुष आगे आ गया हो, लेकिन उसमें जीवन के ब्योरे की हर चीज़ तब तक याद नहीं रहती जब तक कि चैत्य पुरुष हमेशा सामने न रहता हो और बाहरी सत्ता के साथ पूरी तरह एक न हो गया हो। यह एक नियम ही है कि शरीर के मरते ही भौतिक मन और भौतिक प्राण विलीन हो जाते हैं : वे विघटित होकर वैश्व प्रकृति में जा मिलते हैं और उनके अनुभवों में से कुछ नहीं बच रहता। जब तक कि वे चैत्य के साथ एक न हो जायें ताकि चेतना के दो भाग न रह कर एक समग्र चेतना बन जाये और सारी प्रकृति केन्द्रीय 'भागवत संकल्प' के चारों ओर एक न हो जाये और यह केन्द्रीय सत्ता ऊपर की दिव्य चेतना की धारा के साथ सम्बद्ध न हो जाये—जब तक इतना सब न हो जाये तब तक व्यक्ति को उस चेतना का ज्ञान नहीं मिल सकता; वह अपनी क्रमिक आत्माभिव्यक्ति में क्रमशः आने वाले आकारों और जीवनों के बारे में भली-भाँति परिचित नहीं हो सकता। यह सब हो लेने से पहले **अपने** पिछले जन्मों और उनकी घटनाओं की बातें करना निरर्थक है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १६१-६२

अनेक शरीरों में अनेक आत्मा

चैत्य पुरुष एक विकासक्रम का परिणाम है, यानी, उस दिव्य 'चेतना' के विकासक्रम का जो जड़-तत्त्व में फैल गयी और धीरे-धीरे उसे उठाने लगी। उसे भगवान् तक लौटाने के लिए विकसित करने लगी। इस दिव्य केन्द्र ने बहुत सारे जन्मों में उत्तरोत्तर इस चैत्य पुरुष की रचना की। एक

समय आता है जब वह एक प्रकार की पूर्णता तक जा पहुँचता है, अपनी वृद्धि और रचना की पूर्णता तक। तब बहुधा, चूँकि उसमें उपलब्धि के लिए अभीप्सा होती है, भगवान् को और ज़्यादा अच्छी तरह अभिव्यक्त करने के लिए अधिक पूर्णता की अभीप्सा होती है, इसलिए साधारणतः वह अपनी ओर अन्तर्लयन की किसी सत्ता को खींच लेता है, अर्थात्, उन सत्ताओं में से किसी को, श्रीअरविन्द जिसे अधिमानस कहते हैं, वह सत्ता जन्म लेने के लिए चैत्य पुरुष में आती है। यह उस प्रकार की सत्ताओं में से हो सकती है जिन्हें मनुष्य सामान्यतः देव कहते हैं, किसी प्रकार के देवता। और जब यह मेल होता है तो स्वभावतः चैत्य पुरुष बड़ा हो जाता है और अवतरित होने वाली सत्ता के स्वभाव का भागीदार बन जाता है। और तब उसमें अपने अन्दर से निर्गत अंश पैदा करने की शक्ति होती है। इन सत्ताओं में निर्गत अंश तैयार करने की क्षमता होती है, यानी, वे अपने अन्दर से अपना एक भाग प्रक्षिप्त कर सकती हैं जो स्वतन्त्र होकर दूसरों में जन्म लेने के लिए चला जाता है। तो इस तरह केवल दो नहीं, तीन, चार, पाँच निर्गत अंश हो सकते हैं। यह उदाहरणों पर निर्भर होता है, लेकिन इस तरह हो सकता है। अर्थात्, उनका एक ही उद्गम हो सकता है जिसे हम चैत्य-भागवत कह सकते हैं। और साधारणतः जब कई निर्गत अंश हों तो भिन्न-भिन्न व्यक्ति सकारण अपने-आपको वह सत्ता मानते हैं क्योंकि उनके अन्दर उस देव का कुछ अंश होता है : यह ऐसा होता है मानों किसी के एक भाग ने अपने-आपको स्वयं अपने अन्दर से बाहर फेंका है और वह अन्य स्वतन्त्र व्यक्ति बन गया। यह अपने-आपको दोहराना नहीं है, बल्कि एक प्रकार का आत्म-प्रक्षेप है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २९१-९२

विगत जीवन की विस्मृति

पुनर्जन्म के समय आत्मा पूरी तरह अतीत को भूली हुई हो ऐसा भी कोई नियम नहीं है। विगत जीवन के बहुत से संस्कार काफ़ी गहरे और स्पष्ट हो सकते हैं, विशेषकर बचपन में, लेकिन सांसारिक सीख और परिवेश के प्रभाव उनके असली रूप को पहचानने से बहुधा रोक देते हैं। ऐसे भी बहुत से लोग हैं जिन्हें अपने पूर्व जन्मों की सुनिश्चित स्मृतियाँ

होती हैं। लेकिन ये चीज़ें शिक्षा और परिमण्डल द्वारा निरस्त कर दी जाती हैं, वे टिकती नहीं, पनपती नहीं; बहुत से उदाहरणों में तो उनके अस्तित्व को ही मिटा दिया जाता है। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि चैत्य पुरुष जो कुछ अपने साथ ले जाता या लाता है वह प्रायः पिछले जीवनों के अनुभवों का साररूप होता है, विस्तार नहीं। अतः उनसे वर्तमान जीवन की स्मृति की तरह सुसंगत स्मृति की आशा नहीं की जा सकती।

आत्मा सीधी चैत्य जगत् में जा सकती है, लेकिन यह मृत्यु के समय की चेतना की अवस्था पर निर्भर करता है। यदि उस समय चैत्य सत्ता सामने हो तो तुरन्त वहाँ पहुँच जाना सम्भव है। मानसिक, प्राणिक और चैत्य अमरता पा लेने से कोई अन्तर नहीं पड़ता—बल्कि जिन्होंने उसे पा लिया है वे विभिन्न जगतों में विहार करने में ज़्यादा सक्षम हैं और भौतिक जगत् से बँधे बिना उस पर काम कर सकते हैं। यह सब कहने का निष्कर्ष यही है कि इन चीज़ों के लिए कोई एक बँधा-बँधाया नियम नहीं बनाया जा सकता। बहुत से हेर-फेर सम्भव हैं, सब कुछ चेतना पर, इसकी ऊर्जाओं, रुजहानों और निर्माण पर आश्रित होता है। फिर भी, एक सामान्य ख़ाका और चौखटा है जिसमें सब यथास्थान जँचाये हुए हैं।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४२३

नरक और स्वर्ग तो बहुधा आत्मा की काल्पनिक अवस्थाएँ होती हैं, बल्कि कहना चाहिये प्राण की अवस्थाएँ, जिन्हें वह प्रयाण के बाद गढ़ता है। नरक का अर्थ है, प्राण जगत् से होकर गुज़रने वाली कष्टप्रद यात्रा या फिर वहाँ देर तक अटक जाना, जैसा कि बहुत से आत्महत्या करने वाले लोगों के साथ होता है जहाँ वे इस अस्वाभाविक और उग्र प्रयाण से उत्पन्न कष्ट और पीड़ा की शक्तियों से घिरे रहते हैं। निस्सन्देह, मन और प्राण के ऐसे लोक भी हैं जो सुखद या दुःखद अनुभवों से पटे हुए हैं। अपने-अपने स्वभाव के अनुसार व्यक्ति अपने-अपने सादृश्य पाता हुआ इनमें से गुज़रता है। लेकिन दण्ड या पुरस्कार का विचार अनपढ़ और अशिष्ट कल्पना है, मात्र एक प्रचलित भ्रान्ति है।

—'श्रीअरविन्द के पत्र' (१), पृ. ४२२-२३

पूर्वजन्मों की याद

पूर्वजन्म

हममें से कितनों को अपने पूर्वजन्मों की याद है?

हम सभी में, चेतना के किसी भाग में, यह स्मृति रहती है। परन्तु यह एक ख़तरनाक विषय है, क्योंकि मानव-मन को अतिरञ्जना का बहुत शौक होता है। जैसे ही उसको पुनर्जन्म के सत्य के बारे में कुछ ज्ञात होता है, वैसे ही वह इसके चारों ओर एक सुन्दर कहानी गढ़ डालना चाहता है। तुम्हें बहुत-से लोग इस बारे में अद्‌भुत कहानियाँ सुनायेंगे कि इस सृष्टि की रचना कैसे हुई, भविष्य में इसकी क्या गति होगी, तुम पहले कैसे और कहाँ जन्मे थे और आगे क्या होओगे, कैसे-कैसे जीवन तुमने बिताये हैं और अब कैसे-कैसे जीवन बिताओगे। परन्तु इस सबसे आध्यात्मिक जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं होता। पूर्वजन्मों की सच्ची स्मृति पूर्ण ज्ञान का एक अंग अवश्य हो सकती है, किन्तु इसकी प्राप्ति इस प्रकार की सुन्दर-सुन्दर कल्पना-तरंगों द्वारा सम्भव नहीं है। एक ओर तो यह ज्ञान वस्तुनिष्ठ है तो दूसरी ओर बहुत कुछ व्यक्तिगत और आत्मनिष्ठ अनुभूति पर निर्भर करता है और यहीं बनावट और विकार पैदा करने तथा असत्य रचनाओं को गढ़ डालने की बहुत सम्भावना रहती है। इन बातों के सत्य तक पहुँचने के लिए आवश्यक है कि अनुभव ग्रहण करने वाली चेतना शुद्ध और निर्मल हो, किसी भी मनोमय या प्राणमय हस्तक्षेपों से मुक्त हो और तुम्हारी व्यक्तिगत धारणाओं और भावुकताओं से तथा मन की अपने ही तरीक़े से समझाने या व्याख्या करने की आदत से मुक्त हो। पूर्वजन्मों का अनुभव सत्य हो सकता है, किन्तु तुमने जो देखा और तुम्हारे मन ने उसकी जो कुछ व्याख्या की अथवा उसका जो रूप गढ़ा, इन दोनों के बीच एक बड़ी भारी खाई होती है। जब तुम मानव भावनाओं से ऊपर उठ सको और अपने मन से अलग हो सको तभी इस सत्य तक पहुँच सकोगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ४६-४७

चैत्य जीवन

और फिर वे हैं जिन्होंने थोड़ा-बहुत जान लिया है, जो कम या अधिक गुह्यवेत्ता होते हैं या बचकाने ढंग से पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। वे मानते हैं कि एक छोटे-से व्यक्ति ने एक भौतिक चोगा पहन लिया है, और वह है शरीर, और जब यह कपड़ा गिर जाता है तो वह जाकर एक और पहन लेता है, फिर एक और... एक गुड़िया की तरह जिसके कपड़े बदले जाते हैं। उनके लिए यह बात ऐसी ही होती है : व्यक्ति शरीर उसी तरह बदलता है जैसे वह अपने कपड़े बदलता है। कुछ लोगों ने किताबें भी लिख डाली हैं जिनमें वे बड़ी संजीदगी से बन्दर की योनि से लेकर अपने सभी जन्मों की सारी बातें बताते हैं! लेकिन वास्तव में यह बिलकुल बचकानापन है। क्योंकि हज़ार में से नौ सौ निन्यानबे उदाहरणों में केवल छोटी-सी केन्द्रीय सत्ता ही मृत्यु के बाद बनी रहती है; बाक़ी सब घुल जाता है, टुकड़े-टुकड़े होकर इधर-उधर बिखर जाता है और व्यक्तित्व बिलकुल नहीं बचता। भौतिक जीवन में, भौतिक जीवन के क्रिया-कलाप में कितनी बार चैत्य पुरुष सचेतन रूप से काम करता है?... मैं उन लोगों की बात नहीं कर रही जो योग करते हैं या कुछ अनुशासनप्रिय हैं। मैं औसत लोगों की बात कर रही हूँ जिनमें चैत्य क्षमता है, अर्थात्, जिनका चैत्य इतने पर्याप्त रूप में विकसित हो चुका है कि जीवन में हस्तक्षेप और मार्ग-दर्शन कर सके—कइयों में चैत्य के हस्तक्षेप के बिना बरसों-पर-बरस गुज़र जाते हैं। और वे आकर तुमसे कहते हैं कि वे किस देश में पैदा हुए थे, उनके माता-पिता कैसे थे और वे किस घर में रहते थे, मकान के पास गिरजाघर की छत कैसी थी और जंगल कैसा था, इसी तरह की अपने जीवन की एकदम सामान्य बातें बताते हैं! यह एकदम मूर्खताभरी बात है, क्योंकि ये सब चीज़ें तो मिटायी जा चुकी हैं और अब उनका कोई अस्तित्व नहीं। तुम्हारे अन्दर जो स्मृति रह सकती है वह उस क्षण की हो सकती है जब कोई विशेष बात हुई हो, जिसे हम "मार्मिक" क्षण कह सकते हैं, जब चैत्य किसी आन्तरिक पुकार के कारण या अनिवार्य आवश्यकता के कारण सहसा हस्तक्षेप करता है —चैत्य अचानक हस्तक्षेप करता है—और चैत्य-स्मृति पर वह चीज़ अंकित रहती है। जब चैत्य-स्मृति हो तो तुम जीवन के उस **क्षण** की परिस्थितियों की शृंखला को याद रखते हो, विशेष रूप से आन्तरिक

भावना को और उस समय कार्य करने वाली चेतना को। और तब वह दूसरे संसर्गों के साथ चेतना में चला जाता है। उसके साथ ही आस-पास की चीज़ें भी चली जाती हैं, सम्भवतः बोला हुआ एक शब्द, सुना हुआ एक वाक्य। लेकिन जो चीज़ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थी वह थी अन्तरात्मा की अवस्था जिसमें तुम थे : क्योंकि वह बहुत स्पष्ट रूप से अंकित रहती है। ये चैत्य जीवन की ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं, ऐसी चीज़ें हैं जिन्होंने गहरी छाप छोड़ी है और उसकी रचना में भाग लिया है। इसलिए जब तुम्हें लगे कि तुम्हारा चैत्य पुरुष स्पष्ट, सतत रूप में, निरन्तर तुम्हारे साथ है, तो ऐसे क्षण तुम्हें याद रहते हैं। ये थोड़े-से हो सकते हैं, पर ये तुम्हारे जीवन की दीप्तियाँ हैं। तुम यह नहीं कह सकते : "मैं अमुक-अमुक व्यक्ति था, मैंने यह-यह किया। मेरा यह नाम था और मैं यह या वह करता था।" या फिर इसका मतलब होगा कि उस समय (यह विरल है) परिस्थितियों का ऐसा मेल था कि व्यक्ति घटना की तारीख़ या जगह, देश या युग निश्चित कर सकता है। यह हो सकता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ३६-३८

पिछले जन्मों की चैत्य स्मृतियाँ और काल्पनिक कहानियाँ

कुछ लोग हैं जो दूसरों के जीवन के बारे में सुनाते हैं।

हाँ, मैं जानती हूँ। मैं बहुत-सी बातें जानती हूँ। मैंने वह सब सुन रखा है जो कोई सुन सकता है। वे कहानी-पर-कहानी सुनाते जाते हैं। वे तुम पर निगाह डालते हैं और कहते हैं : "तुम अमुक व्यक्ति थे। तुमने यह-यह किया था।" मैं विश्वास दिलाती हूँ कि यह सच नहीं है। क्योंकि मैं जानती हूँ कि यह कैसे जाना जा सकता है कि तुमने अमुक व्यक्ति को कहाँ देखा था, वह कैसा था और अब कैसा है। यह कोई कहानी नहीं है कि तुम किताब में लिख डालो। जब तुम किसी के अन्दर देखते हो, जब तुम्हें यथार्थ रूप में, चैत्य-जगत् का बोध प्राप्त होता है जो तुम्हें यह क्षमता देता है कि तुम देख सको कि चैत्य कहाँ था, फिर अचानक तुम एक दृश्य, एक बिम्ब, एक रूप, एक शब्द देखते हो; एक प्रकार का संसर्ग होता है जिसके कारण अभी तक पिछले जन्मों की कुछ सहानुभूतियाँ और आकर्षण बने रहते हैं।

लेकिन, जैसा कि मैं कह रही थी, ये जीवन के "क्षण" होते हैं। और इस तरह व्यक्ति देखता है, इन विभिन्न क्षणों को देख सकता है, लेकिन सारे जीवन का वर्णन नहीं कर सकता।

मेरा ख़याल है श्रीअरविन्द ने इस बारे में कुछ, बहुत मज़ेदार बातें लिखी हैं—उन सब बड़े लोगों के बारे में जिनके नाम इतिहास में सुरक्षित हैं—अनेकों सीज़र, अनेकों महान् व्यक्ति, नेपोलियन, शेक्सपीयर! वे कितने हैं! वे सैकड़ों हैं! और उनकी कहानियाँ सुनो: "मैं यह था, मैं वह था, मैंने यह किया।" या उन बैठकों में देखो जहाँ तथाकथित "प्रेतात्माएँ" आती और तुमसे बातचीत करती हैं। एक बड़ी संख्या में लोग प्रेतात्माओं के साथ खिलवाड़ करने में मज़ा लेते हैं। स्वतःलेखन और विशेष रूप से प्रेतात्माओं के साथ सम्पर्क साधने में मज़ा लेते हैं। हाँ, तो कुछ बातूनी प्रेतात्माएँ होती हैं जो एक ही समय अनेक स्थानों पर आती हैं, विशेषकर नेपोलियन जैसे लोग (मालूम नहीं उन्हें नेपोलियन के लिए विशेष आकर्षण क्यों है), हर जगह नेपोलियन आ जाता है और अपने जीवन की असाधारण घटनाएँ सुनाता है, प्रायः ये घटनाएँ परस्पर विरोधी होती हैं, शायद एक ही समय पर कही जाती हैं! सचमुच वे बड़े सक्रिय लोग होते हैं। यह सारी चीज़ अत्यन्त हास्यास्पद है—और असम्भव है।

वास्तव में ये छोटी-छोटी प्राणिक सत्ताएँ होती हैं। व्यक्ति के मर जाने पर उसकी जो इच्छाएँ बनी रहती हैं और अपना आकार बनाये रहती हैं, उनकी सड़ान्ध से, तथा जो कल्पनाएँ जमी रह गयी हैं लेकिन अभिव्यक्त होना और फिर से प्रकट होना चाहती हैं उनसे, इन सत्ताओं का वर्ग उत्पन्न होता है। कभी-कभी ये छोटी-छोटी प्राणिक सत्ताएँ होती हैं, जो बहुत अनुकूल नहीं होतीं, जैसे ही वे देखती हैं कि लोग स्वतःलेखन, प्रेतात्माओं के साथ सम्पर्क आदि के साथ खेल रहे हैं, वे भी आकर खेलने लग जाती हैं। और चूँकि वे ऐसे क्षेत्र में होती हैं जहाँ से व्यक्ति के विचारों को पढ़ सकना आसान है, इसीलिए वे भली-भाँति तुम्हें बता सकती हैं कि तुम्हारे दिमाग में क्या है। तुम जो आशा करते हो वे उसी के अनुकूल उत्तर देती हैं। तुम एक विशेष उत्तर चाहते हो, वे तुम्हारे पूछने से पहले ही उत्तर दे देती हैं! वे तुम्हें ठीक-ठीक ब्योरे की बातें बता सकती हैं, वे कह सकती हैं कि तुम्हें यह-यह हुआ था, कि तुम्हारे परिवार के अमुक सदस्य...। वे

बहुत अच्छी तरह जानती हैं। वे भली-भाँति विचार पढ़ लेती हैं और तुम्हें विश्वास दिलाते हुए बातें बनाती हैं। तुम कह उठते हो : "मैंने तो नहीं कहा था कि मैं विवाहित हूँ और मेरे तीन बेटे और चार बेटियाँ हैं। तब उसे यह सब कैसे मालूम हुआ?"—क्योंकि यह तुम्हारे सिर में था।

चैत्य-स्मृति का एक बहुत विशेष स्वरूप होता है, एक अद्‌भुत तीव्रता होती है, पर उनका इस तरह वर्णन नहीं किया जा सकता...। वे जीवन के अविस्मरणीय क्षण होते हैं जब चेतना तीव्र, प्रकाशमय, सबल, सक्रिय और शक्तिशाली होती है और कभी-कभी ये जीवन के ऐसे मोड़ होते हैं जो जीवन की दिशा ही बदल देते हैं। लेकिन इससे तुम यह कभी नहीं कह सकते कि तुम कौन-से कपड़े पहने हुए थे या किससे बातें कर रहे थे या तुम्हारा पड़ोसी कौन था या तुम किस प्रकार के क्षेत्र में थे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ३८-४०

योगरत बिल्ली और उसका पुनर्जन्म

एक बिल्ली थी... पता नहीं उसका क्या नाम था; मेरे पास बहुत-सी बिल्लियाँ थीं, अब मुझे उनकी याद नहीं है; एक का नाम था 'किकि'। वह इस बिल्ली का पहला बिलौटा था, और एक और था, इसी का दूसरा बेटा (यानी, जो दूसरी बार पैदा हुआ था) जिसका नाम था 'ब्राउनी'।

यह बहुत अच्छा था। यह बिल्लियों की बीमारी से मरा था—जैसे कुत्तों की बीमारी होती है उसी तरह बिल्लियों की भी बीमारी होती है—पता नहीं उसे यह बीमारी कैसे लग गयी। वह बीमारी के दौरान अद्‌भुत था। मैं बच्चे की तरह उसकी देखभाल कर रही थी। वह हमेशा एक तरह की अभीप्सा प्रकट करता था। उसके बीमार पड़ने से पहले की बात है... उन दिनों हम पुस्तकालय-भवन के एक कमरे में ध्यान किया करते थे, वहाँ के एक कमरे में—स्वयं श्रीअरविन्द के कमरे में। हम फ़र्श पर बैठा करते थे। कोने में एक आराम-कुर्सी रहती थी। जब हम ध्यान के लिए इकट्ठे होते तो हर बार यह बिल्ली आकर आराम-कुर्सी पर जम जाया करती थी, और वास्तव में, समाधि में चली जाती थी, उसमें समाधि की हरकतें होती थीं; वह सोती न थी, वह सोयी हुई नहीं होती थी, वह सचमुच समाधि में चली जाती थी; उसके लक्षण दिखायी देते थे और वह आश्चर्यजनक गतियाँ करती थी,

जैसे स्वप्नस्थ जानवर करते हैं; वह उसमें से बाहर न आना चाहती थी, वह समाधि छोड़ने के लिए तैयार न होती थी, घण्टों उसी में रहती थी। लेकिन वह हमारे ध्यान शुरू करने से पहले कभी उस कमरे में न आती थी। वह उस जगह जम जाती थी और ध्यान के सारे समय वैसे ही रहती थी। हमलोग तो ध्यान समाप्त कर लेते थे, लेकिन वह ध्यान में ही रहती थी, जब मैं उसे लेने जाती और उसे एक ख़ास तरह से बुलाती और उसे शरीर में वापस ले आती तभी वह जाने को राज़ी होती थी; अन्यथा चाहे जो आता और उसे पुकारता, वह हिलती तक न थी। हाँ, तो इस बिल्ली में हमेशा एक बड़ी अभीप्सा रहती थी—मनुष्य बनने की अभीप्सा, और वस्तुतः, जब उसने शरीर छोड़ा तो वह मानव शरीर में चली गयी। हाँ, वह मनुष्य की चेतना का एक बहुत छोटा-सा भाग था।... लेकिन यह बिल्ली मानव शरीर के साथ सम्पर्क पाने के लिए बहुत-से जन्मों को, यानी, बहुत-सी चैत्य अवस्थाओं को लाँघ गयी। वह काफ़ी सीधा-सादा मानव शरीर था, फिर भी, फिर भी...

बिल्ली के विकास और मानव सत्ता के विकास में फ़र्क है...

ऐसा होता है... मेरा ख़याल है ये उदाहरण अपवाद थे, फिर भी ऐसा होता तो है ही।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. १०९-१०

देदीप्यमान सूर्य क्षितिज से ऊपर उठ रहा है। यह तुम्हारे प्रभु हैं जो तुम्हारी ओर आ रहे हैं।

समस्त जगत् जाग उठा है और उनकी भव्यता के सम्पर्क के आनन्द में अँगड़ाई ले रहा है।

उभरती हुई, खुलती हुई धरती की तरह, बढ़ते हुए पेड़ की तरह, खिलते हुए फूल की तरह, गाते हुए पक्षी की तरह, प्रेम करने वाले मनुष्य की तरह उनका प्रकाश तुम्हारे अन्दर प्रवेश करे और हमेशा बढ़ती हुई, विस्तृत होती हुई प्रसन्नता में चमक उठे। यह प्रसन्नता स्थिर रूप से आगे बढ़ती जाये जैसे आकाश में तारे बढ़ते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २५५

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

दिसम्बर

१. प्र. भगवान् क्या हैं? क्या "भगवान्" का अर्थ है "परम सत्य"?
उ. भगवान् परम सत्य हैं क्योंकि वे ही परम सत्ता हैं जिनसे सब कुछ उत्पन्न हुआ है और जिनमें सब कुछ स्थित है।—श्रीअरविन्द

२. हम हमेशा उन चीज़ों से घिरे रहते हैं जिनके बारे में हम सोचते हैं।

३. चीन के किसी वृद्ध ज्ञानी ने लिखा है, "विचार अपने-आप अपना दुःख पैदा करता है।"

४. सुख ही जीवन का लक्ष्य नहीं है।
साधारण जीवन का लक्ष्य है कर्तव्य-पालन, आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है भगवान् को पाना।

५. ओह, कैसा अद्‌भुत होगा उन बाहरी चीज़ों को न देखना जो हमेशा बदलती रहती हैं, हर जगह और हर चीज़ में केवल भगवान् की अपरिवर्तनीय एकता को देखना कितना अद्‌भुत होगा!

६. जब मन भगवान् की ओर मुड़ता है तो वह शक्तिशाली यन्त्र बन जाता है।

७. हमारे सभी विचार, सभी भावनाएँ भगवान् की ओर बढ़ती हैं जैसे नदी समुद्र की ओर।

८. समृद्धि केवल उसी के साथ टिकी रह सकती है जो उसे भगवान् के अर्पित करता है।

९. सच्ची आध्यात्मिकता जीवन को रूपान्तरित कर देती है।

१०. पूर्णता है वह सब कुछ जो हम अपनी उच्चतम अभीप्सा में बनना चाहते हैं।

११. दुर्भाग्य की अपेक्षा सफलता में से गुज़रना ज़्यादा कठिन है।
सफलता की घड़ी में तुम्हें अपने से ऊपर उठने के लिए विशेष रूप से जागरूक रहना चाहिये।

१२. हमारे विश्वास की निष्कपटता में ही हमारी विजय की निश्चिति है।

१३. प्रगति है—सृष्टि पर भगवान् के प्रभाव का चिह्न।

१४. हमेशा ऊँचे उड़े चलो, दूर-दूर चलते चलो, बिना हिचके चले चलो। आज की आशाएँ कल की सिद्धियाँ होंगी।

१५. जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण कौन-सा है? वर्तमान क्षण। क्योंकि भूत का तो अस्तित्व ही नहीं रहता और भविष्य का अभी तक कोई अस्तित्व नहीं है।

१६. सच्ची समझ पाने के लिए अपने मन में से बाहर निकल आओ।
सच्ची भावनाएँ पाने के लिए अपनी भावुकता में से बाहर निकल आओ।
सच्ची क्रियाशीलता पाने के लिए अपनी संवेदनशीलता में से बाहर निकल आओ।

१७. मन के लिए—ज्ञान।
हृदय के लिए—प्रेम और आनन्द।
जीवन के लिए—शक्ति।
भौतिक के लिए—सौन्दर्य।

१८. प्राण में उचित वृत्ति: अपनी सिद्धि और भगवान् की सहायता में आत्म-विश्वास और मानसिक और प्राणिक शान्त श्रद्धा।

१९. शरीर में सत्ता का आनन्द भगवान् के प्रति कृतज्ञता की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है।

२०. प्राण है हमारी शक्ति, ऊर्जा, उत्साह तथा प्रभावशाली गति का आसन, लेकिन उसे व्यवस्थित प्रशिक्षण की ज़रूरत होती है।

२१. अपनी इच्छा के अनुसार न करो, भगवान् की इच्छा के अनुसार करो। औरों की इच्छा के अनुसार भी न करो, नहीं तो तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।

२२. आत्म-नियन्त्रण सबसे बड़ी विजय है, यह समस्त चिरस्थायी प्रसन्नता का आधार है।

२३. जब मनुष्य उस असत्य से थक जायेंगे जिसमें वे निवास करते हैं, तब संसार सत्य के राज्य के लिए तैयार होगा।

२४. भगवान् के बारे में सचेतन होना ही धरती पर हमारे जीवन का लक्ष्य है।

२५. आओ हम प्रतिदिन चिन्ता के बिना जियें। उस चीज़ के बारे में चिन्ता

क्यों की जाये जो शायद कभी हो ही नहीं?

२६. जब हर चीज़ ग़लत होती जा रही हो तो तुम्हें यह जानना चाहिये कि यह कैसे याद रखा जाये कि भगवान् सर्व-शक्तिमान् हैं।

२७. भगवान् के प्रति सतत अभीप्सा में अन्दर जीना, यह चीज़ हमें जीवन को मुस्कान के साथ देखने और शान्त रहने में समर्थ बनाती है—फिर बाहरी परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी क्यों न हों।

२८. पहचानी हुई भूल क्षमा की हुई भूल हो जाती है।

२९. हमारी अपनी पूर्णता के साथ, हमारे अन्दर औरों के प्रति उदार समझ विकसित होती है।

३०. हमारे मन को नीरव और शान्त होना चाहिये, परन्तु हमारे हृदय को तीव्र अभीप्सा से भरा होना चाहिये।

३१. हृदय के अन्दर पंख होते हैं, मन में नहीं।

वक़्त

किसके लिए रुका है,
किसके लिए रुकेगा।
करना है जो भी कर ले,
ये वक़्त जा रहा है।।

पानी का बुलबुला है,
इन्सान की ज़िन्दगानी,
क्षण-भर का अफ़साना,
पल-भर की ये कहानी।।

तेरा आयाम तुझको,
सन्देश दे रहा है।
करना है जो भी कर ले,
ये वक़्त जा रहा है।।

—अज्ञात

ऐसा दिन अवश्य आयेगा...

इस चरम अवस्था के दो स्वरूप हैं। विश्वात्मभाव (Universalisation) और परात्पर भाव (Transcendentalisation)। वह सबमें है और सब उसमें है। जो चल लहरों के उल्लास में है, फूलों के हास में है, वही हमारे जीवन के मधुबन में विलास कर रहा है। जो हमारे हृद्-वृन्दावन में वंशी बजा रहा है, वही चिड़ियों में चहक रहा है, चन्द्र में चन्द्रिका बन कर चमक रहा है और इसी विश्व-चेतना में हमारा नित्य निवास होता है। हमारे दैनिक कर्म उसी चेतना से प्रेरित होते हैं। विश्वात्मभाव का यही सार है। अपने-आपको पुरुषोत्तम में और पुरुषोत्तम को अपने-आपमें प्रतिष्ठित करना होगा। जो उस अव्यक्त अनिर्वचनीय में है वही हमारे व्यक्तित्व में प्रखर सूर्य की तरह प्रकाशमान हो जाये! यही होगी आत्म-परिपूर्णता की चरम अवस्था।

यहाँ सहज में ही यह प्रश्न उठता है कि यह सब कब होगा? क्या हम इसी जीवन में, इन्हीं आँखों से वह दिन देख सकेंगे? जो मनुष्य एक दूसरे का गला घोंटने के लिए सदा अवसर ढूँढ़ा करता है वह कभी इस शैल-शिखर पर चढ़ सकता है?

जब मानव को हम दानव-रूप में देख रहे हैं तो क्या एक ऐसा दिन नहीं आ सकता कि हम उसे देवता के रूप में भी देखें? श्रीअरविन्द का कहना है कि योग के द्वारा मनुष्य की स्वाभाविक शक्ति अपनी उन्नति और निपुणता की ही नहीं बल्कि अपने विकास के चरम शिखर को प्राप्त कर सकती है। एक समय ऐसा था जब दुनिया ऐसी नहीं थी जैसी कि आज हम उसे देखते हैं। जड़-जगत् से पहले उद्भिज-जगत् का आविर्भाव हुआ, उद्भिज के पश्चात् अण्डज और उसके पश्चात् गर्भज जाति उत्पन्न हुई और गर्भज जाति में पहले पशुओं का जन्म हुआ। इसके उपरान्त जड़ में मानस का विकास होकर मनुष्यजाति उत्पन्न हुई। अब मनोमय कोष के बाद विज्ञान का जड़-जगत् में अवतीर्ण होना युक्तियुक्त ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है तथा उसे पृथ्वी की चेतना में स्थापित करना अनहोनी-सी बात मालूम होने पर भी वह केवल सम्भव ही नहीं, बल्कि सुनिश्चित है। अतिमानस मन, प्राण और जड़-तत्त्व के परे सत्ता का एक स्तर है और जिस तरह

मन, प्राण पृथ्वी पर अभिव्यक्त हुए हैं उसी तरह अतिमानस भी एक दिन इस जड़-जगत् में अभिव्यक्त होगा।

जब जड़ में प्राण का अवतरण हुआ था तब एक प्रकार की क्रान्ति उपस्थित हुई थी। उसी प्रकार की एक और क्रान्ति तब उपस्थित हुई थी जब उसके अन्दर मनोमय शक्ति का अवतरण हुआ था। पूर्व काल की युग-सन्धियों की तरह इस समय आवश्यकता है एक प्रकार के आमूल परिवर्तन की, एक नये लोक का ऐश्वर्य उतार कर एक नयी सृष्टि करने की, एक नवनिर्माण की। यह सच्चिदानन्द द्वारा निर्धारित हो चुका है कि अब विकास में मानव अतिमानव या यों कहिये, देव-मानव बन सकेगा। वह आत्मा के साथ, प्रकृति के साथ और भगवान् के साथ एक हो जायेगा। इस प्रकार भगवान् के साथ एकत्व प्राप्त करना और उस चेतनामें जीवन यापन करना ही क्रम-परिवर्तन की सर्वोच्च अवस्था है और आज उसी क्रम-विकास की मनुष्य को आवश्यकता है।

(क्रमशः) —स्व. नारायण प्रसाद 'बिन्दु'

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

भोजन तथा वाणी

एक और चीज़ जो बहुत महत्त्वपूर्ण है, वह है भोजन। अगर तुम ठीक भाव से भोजन करो तो उससे शरीर में परिवर्तन लाने में बहुत सहायता मिलेगी। रही बात उचित प्रकार के भोजन की तो माताजी ने कहा है कि तुम्हें इस तरह चुनाव करना चाहिये मानों तुम्हारे सामने कई प्रकार के भोजन हैं और तुम्हें अपने भोजन के बारे में रासायनिक जानकारी प्राप्त है। लोगों को प्रायः कुछ स्वादों की आदत हो जाती है, कुछ लोग मीठा पसन्द करते हैं, कुछ और लोग खट्टा, चटपटा पसन्द करते हैं। मैं इसकी एक आसान तरकीब बतलाता हूँ और यह एक प्रार्थना होती है। अगर तुम अपनी आदतें भगवान् को अर्पित कर दो तो वे तुम्हारी चेतना में से आदतों को दूर कर देंगे। माताजी ने खाने से पहले की अपनी एक प्रार्थना बतलायी है, "हे मधुर स्वामी, परम सत्य, मैं अभीप्सा करती हूँ कि मैं जो भोजन

कर रही हूँ, वह सारे शरीर के कोषाणुओं में तुम्हारी सर्वज्ञता, तुम्हारी सर्वशक्तिमत्ता को भर दे।" भगवान् सर्वज्ञ हैं इसलिए शरीर का हर कोषाणु सचेतन बन जाता है, उनकी सर्व-शक्तिमत्ता से हर कोषाणु सर्व-शक्तिमान् बन जाता है। आश्रम में प्रविष्ट होने से बहुत पहले मैंने माताजी से कहा, "मैं काम करते समय भगवान् को भली-भाँति याद रख सकता हूँ पर खाते समय उन्हें भूल जाता हूँ।" उन्होंने कहा, "तुम बहुत लोगों के साथ बैठ कर खाते होगे?" और यह बात ठीक थी, और मैं उनकी बात तुरन्त समझ गया और बम्बई लौटने के बाद एक वर्ष तक मैं अकेला अपने कमरे में बैठ कर खाता रहा और इससे मुझे बहुत सहायता मिली। लोगों से मिले बिना, किसी को दावत दिये बिना मैं चुपचाप खाता रहा। अगर तुम सचमुच चाहते हो कि शरीर के कोषाणु सचेतन बन जायें तो कम-से-कम शुरू में एकाग्र होकर उचित समय पर भोजन करो और जब तब कुछ-न-कुछ टूँगते न रहो। यह प्रयास तब तक करते रहना चाहिये जब तक तुम ऐसी स्थिति में न पहुँच जाओ कि फिर तुम्हें एकाग्र होने की ज़रूरत न रहे, क्योंकि तब तुम सहज ही भागवत उपस्थिति का अनुभव कर सकोगे, हर चीज़ में भागवत चेतना को हर समय पा सकोगे, तब सामान्य चेतना के स्थान पर उच्चतर चेतना तुम्हारे जीवन का एक अंग बन जायेगी। भोजन में ज्योति पर, अपने शरीर में भागवत उपस्थिति पर एकाग्र होओ, भोजन की क्रिया में केन्द्रित होकर ऐसा अनुभव करो मानों तुम अपने अन्दर भागवत उपस्थिति को भोजन अर्पित कर रहे हो और माताजी के प्रति यह अभीप्सा रहे कि प्रत्येक कोषाणु सचेतन हो जाये और चुपचाप भोजन करो। यह परीक्षण एक दिन के लिए करो और परिणाम देखो।

भोजन से हम वाणी की ओर मुड़ते हैं। जैसा कि मैंने कहा, पूर्णयोग और पूर्ण रूपान्तर के लिए पूर्ण प्रयास की ज़रूरत होती है। यह साढ़े तेईस घण्टे का नहीं, पूरे चौबीस घण्टे का प्रयास है। हर बार जब तुम असत्य भाषण करते हो, हर बार जब तुम कुछ कहने में या करने में विकृति आने देते हो, तुम भागवत चेतना से अपना सम्बन्ध काट लेते हो, अमरता की ओर बढ़ने की जगह मृत्यु की ओर क़दम बढ़ाते हो। अतः तुमको बहुत ही दृढ़ निश्चय करना होगा कि तुम तब तक न बोलोगे जब तक स्वयं भगवान् ही तुम्हारे द्वारा न बोलना चाहें। अगर तुम परम प्रभु के साथ

ऐक्य में मौन रहो तो तुम देखोगे कि तुम्हारे लिए अपने-आप ठीक चीज़ें होने लगेंगी। अगर तुम किसी के साथ बोलना चाहो तो वह अपने-आप फ़ोन करेगा, तुम किसी से मिलना चाहो तो वह स्वयं आ पहुँचेगा, अगर तुम सत्ता के नये विधान को पा लो, अगर तुम इसे पा सको तो तुम्हारे लिए हर चीज़ बदल जायेगी। तुम्हारे लिए सामान्य बातचीत न तो परिवार में और न समूह में ज़रूरी रहेगी। तो बहुत दृढ़ निश्चय की ज़रूरत है कि तुम सत्यशील रहोगे, केवल मानसिक दृष्टिकोण से नहीं बल्कि भगवान् के वाहक की दृष्टि से भी तुमको उन्हीं के अन्दर तल्लीन रहना चाहिये और उन्हें जो कुछ कहना है वे तुम्हारे द्वारा बोलेंगे। अगर उन्हें तुम्हारे द्वारा कुछ नहीं बोलना है तो तुमको बकबक करने की क्या ज़रूरत? क्या यह ज़रूरी है? अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी चेतना व्यर्थ की चीज़ों से भरी न रहे तो व्यर्थ की चीज़ें न पढ़ो। लगभग तीस वर्ष पहले जब मैं आश्रम में आया था तो माताजी ने मुझसे कहा था, "मैं अख़बार नहीं पढ़ा करती। मेरे पास जिस चीज़ को आना है वह आ ही जाती है।" मैंने समझा कि माताजी नहीं चाहतीं कि मैं अख़बार पढ़ूँ और इसके लिए मना करने का यह उनका तरीक़ा है। वे यह न कहती थीं कि यह करो या यह न करो। वे बस इतना ही कह देती थीं कि मैं ऐसा नहीं करती या वैसा नहीं करूँगी। तो यदि तुम सचमुच रूपान्तर चाहते हो तो वाणी का संयम अनिवार्य है।
(क्रमशः)

—नवजात जी

'नयी कोंपलें' :

तुझे प्रणाम!

इस वर्ष शिक्षाकेन्द्र से उत्तीर्ण हो रहीं चार विद्यार्थिनियों की कृतियाँ—

हे सविता! तुझे प्रणाम!
उठा तू भगाने हमारा आराम
मिटा कर हमारा अन्धकार और भय
कर दिया सम्पूर्ण जग ज्योतिर्मय।

हे इन्दु! तेरा हो गुणगान!
रजनी का चिह्न और अभिमान
तू है रूपान्तर का प्रतीक
अन्धकार का अद्वितीय प्रदीप।

हे वायु! तुझे नमन!
तेरे स्वर से आनन्दित मन
हर तरफ़, हमेशा हमारे पास
तू हमें जीवन दे, दे साँस।

हे अग्नि! तुझे प्रणाम!
यज्ञदेव, हे पावक अनल
प्रज्वलित कर दे तेरा स्पर्श
ला हमारे दिलों में हर्ष।

—मीरा शर्मा

मेरा अपना पॉण्डिचेरी

(शिशु-विहार से पढ़ रहीं निष्ठा का विद्यालय के अन्तिम वर्ष में अपने पॉण्डिचेरी को धन्यवाद-ज्ञापन।)

पॉण्डिचेरी! तुम्हारे बहुत गुण हैं, सौन्दर्य उनमें से सबसे दृश्यमान् है। जिस सौन्दर्य की तलाश में ज़्यादातर पराये लोग तुम्हें देखने आते हैं—साफ़-सुथरा समुद्र का किनारा जिसके पीछे लम्बे नारियल के पेड़ और प्यारी झोंपड़ियाँ जो दिल्ली के राजमार्ग और 'इण्डिया टुडे' के पन्नों पर "शान्तिपूर्ण पॉण्डिचेरी" की 'टैग लाइन' के नीचे दिखते हैं और जो पर्यटकों को, ज़ाहिर है, वास्तविकता से परिचित होने पर निराश करते हैं—वह तुम्हारा असली सौन्दर्य नहीं है। यहाँ के White Town के फ़्रेंच घर भी तुम्हारे सौन्दर्य का पूरी तरह से प्रतिनिधित्व नहीं करते क्योंकि तुम्हारे सौन्दर्य और सुभग स्वभाव का कारण विविधता और वैचित्र्य है, और ऐसी चीज़ों का ज्ञान पाने के लिए फ़्रेंच शैली के घर, दक्षिण भारतीय मन्दिर, प्रोटेस्टेंट

चर्च, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की दुकानें, सड़कों पर बनी कलाकृतियाँ और आध्यात्मिक विकास के केन्द्र आश्रम और ओरोवील, सबको अलग-अलग से नहीं बल्कि एक साथ परखना चाहिये और तब इसमें कोई अर्थ उभर सकता है।

पॉण्डी! तुम्हारा सबसे प्रभावी गुण है तुम्हारा विवेक। हर सप्ताह तुम्हारी आबादी दो दिनों के लिए दुगुनी हो जाती है पर फिर सप्ताहान्त के मेहमान कभी आकर यहाँ बसते नहीं। हर कोई यहाँ रहने के लिए तैयार नहीं होता, तुम अपने वासियों को बहुत सावधानी से चुनती हो। तुम्हारा अनुभव पाकर बहुत से लोग यहाँ रहने की ख़्वाहिश का त्याग कर देते हैं, किसी से गरमी सही नहीं जाती, किसी को लगता है कि पड़ोसी मित्रवत् नहीं है और किसी को भाषा समझ में नहीं आती, पर कुछ लोग इन मुश्किलों की उपेक्षा करते हैं, वे तुम्हारी चुनौती स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि उन्हें यहाँ आराम से ज़्यादा कुछ और चाहिये होता है, और ये ही लोग तुम्हें पसन्द हैं।

तुमसे दूर रह कर पता नहीं कैसा होगा, शायद मैं कहीं और जाकर तुम्हें भूल जाऊँ या शायद मुझे एहसास हो कि मैंने तुम्हारा महत्त्व नहीं समझा या शायद मुझे किसी दूसरे नगर से आत्मीयता न होने के कारण तुम्हारे गुणों की सही तुलना न कर पाने का एहसास हो। मुझे लगता है कि तुमसे दूर जाना बिलकुल मछुआरे की तरह नाव लेकर लम्बे समय के लिए समुद्र में जाने जैसा होगा। मछुआरे की पकड़ में मछली आये या न आये, सूर्यास्त होते ही वह स्थल की स्थिरता और दृढ़ता की कामना करता है। जब मैं दुनिया के समुद्र में नाव लेकर निकलूँगी तो मुझे भी हमेशा तुम्हारे स्थिर और निर्धारित तट की कामना होगी।

अध्यापिका की टिप्पणी—बहुत ख़ूब, सचमुच लाजवाब!! और तुम यह भी अटूट विश्वास अपने हृदय में सँजो कर रखना कि पॉण्डिचेरी और उसके वासी हमेशा बाँहें फैलाये तुम्हें अपने अंक में भरने के लिए आँखें बिछाये रहेंगे।

—निष्ठा त्यागी

काश!...

जब लोग आपस में अच्छी तरह से बातें करते हैं तभी दुनिया में ख़ुशी हो सकती है, क्योंकि अच्छे शब्दों से ही लोग विकसित हो सकते हैं, बेहतर बन सकते हैं।

कई लोगों ने पानी पर कुछ परीक्षण किये, जैसे कि सकारात्मक और नकारात्मक शब्दों का उन पर ठप्पा लगाया, कई तरह के संगीतों से उनका सम्पर्क करवाया और उन्होंने देखा कि जिस पानी पर अच्छे शब्दों का ठप्पा लगा था उनके 'क्रिस्टल' ख़ूबसूरत और पवित्र थे। मगर जो शब्द बुरे थे उनके पानी के 'क्रिस्टल' बदसूरत और अपवित्र थे, मटमैले थे।

मनुष्य भी ऐसे ही क्रिया करता है। हम ७०% पानी ही हैं और हम भी इसी तरह बदल सकते हैं। हमें, हर व्यक्ति को सिर्फ़ इसी चेतना के साथ हर एक के साथ पेश आना चाहिये, तभी हम सब भी पवित्र जल के प्रतीक बन पायेंगे। काश!... —त्वरा श्रीवास्तव

कौन था वह...

जब उसकी ग़लतियों पर सब हँसते थे तो वह कहता था कि आज मैं दो तरीक़ों से सफल हुआ। पहला कि मैंने सही उत्तर सीखा और दूसरा कि मैंने सबका मनोरञ्जन भी कराया। उसकी सबसे अलग सोच थी पर थी सकारात्मक। वह हँसमुख था और अगर उसकी आँखों में नमी होती भी तो वे ख़ुशी के आँसू होते थे।

वह आज को आज में रह कर जीता था। अगर हम अपनी आँखें किताबों पर जमाये रखते थे तो वह खिड़की से बाहर झाँकता रहता था। वह कहता था कि तुम किताबों से सीख रहे हो और मैं प्रकृति से, पर बस इतनी सी बात है कि किताबें यहीं पर रहेंगी और प्रकृति अपना रूप बदलती रहती है। उसके लिए मानों ज़िन्दगी उतनी ही आसान थी जितनी हमारे लिए मुश्किल। वह कहता था कि ज़िन्दगी में क़ाबिल बनने के लिए चेहरे पर मुस्कुराहट ही काफ़ी है। वह कोई और नहीं, **मेरा दिल था**।

—शक्ति शर्मा

कहाँ है पूर्णविराम?

उन ईसाई महिला की बीमारी जानलेवा थी, चिकित्सकों ने अब उनकी ज़िन्दगी की मियाद को तीन महीनों में क़ैद कर दिया था—इस बात को बख़ूबी जानते हुए भी जीवन जीने की उनकी ख़ुशी में कोई फ़र्क नहीं दीखा...। अपने पोते-पोतियों को पहले की तरह कहानियाँ सुनातीं, लोरियाँ गाकर सुलातीं, बहू-बेटे के साथ खाने की मेज़ पर वैसे ही ठहाके लगातीं, बेटी-दामाद जब-जब आते तो रात के खाने के बाद पहले की ही तरह बाहर बग़ीचे में चाय की चुस्कियाँ चलतीं। सभी बड़े जानते थे कि उनकी माँ के दिन गिनती के हैं, वे ज़्यादा-से-ज़्यादा वक़्त उन्हीं के साथ बिताते और अचरज में पड़े रहते कि आख़िर माँ के पास ऐसा कौन-सा जादू है जो उन पर मौत के काले साये की छाया तक नहीं पड़ने दे रहा?

वह जादू था, ज़िन्दगी को देखने का उनकी माँ का नज़रिया। मृत्यु के दो दिन पहले माँ ने अपनी अन्तिम इच्छाओं के लिए गिरजाघर के पादरी को घर बुलवाया। उनकी मृत्यु पर कौन-सा संगीत बजाया जाये, कौन-कौन से गीत गाये जायें, कौन-से पाठ पढ़े जायें और वे किस लिबास में हों, सब कुछ विस्तार से समझाने के बाद उन्होंने पादरी से कहा—"और मेरी अन्तिम इच्छा यह भी है कि ताबूत के अन्दर मेरा शरीर रखने से पहले मेरे हाथों के बीच एक जोड़ी छुरी-काँटा रख दीजियेगा।" सभी के प्रश्नचिह्न बने मुँह खुले-के-खुले रह गये। माँ यह कैसा मज़ाक कर रही हैं??? लेकिन माँ की आँखें तो दमक रही थीं, होठों के कोनों पर मुस्कान थिरक रही थी। ख़ुशी से लबालब, उन्होंने अपना रहस्य खोला—अपनी सारी ज़िन्दगी में मैंने यह देखा है—चाहे वह गिरजा की गोष्ठियों के बाद का सहभोज हो, पारिवारिक भोजन हो या इष्ट-मित्रों के साथ दावत—मुख्य खाना ख़तम होने के बाद हमेशा थालियाँ समेटने के साथ-साथ कोई-न-कोई ज़रूर यह ऐलान कर बैठता है, "मीठा खाने के लिए अपने-अपने छुरी-काँटे रखे रहियेगा।" भोजन का यह हिस्सा मुझे सबसे अधिक भाता है जिसमें केक, आइसक्रीम के साथ-साथ दसियों मिठाइयाँ परोसी जाती हैं; यानी "दावत के बाद की बड़ी दावत"। मैं तो यही मानती हूँ कि हमारी सारी ज़िन्दगी हमारे सामने पुरसी हुई एक ऐसी दावत है जिसमें आने वाला हर पल पिछले पल से कहीं

ज़्यादा मीठा, ज़ायकेदार होता है। कई साल पहले मैंने ज़िन्दगी का यह गुर पा लिया था और मैंने देखा कि सारी ज़िन्दगी मैं बड़ी ख़ुश रही। और मैंने वैसे यह भी अच्छी तरह समझ लिया कि ज़िन्दगी की पुरसी हुई थाली में अगर बस मीठा-ही-मीठा हो तो जी उकता जायेगा इसलिए भगवान् ने हर एक की दावत में ढेरों मिठाइयों के साथ-साथ चरपरे, कड़वे, खट्टे, कसैले, मिर्चदार—सभी प्रकार के व्यञ्जन सजा कर थाली हमारे सामने सरका दी। मैं तो हमेशा जीवन के खट्टे, कसैले, तीखे खाने के बाद अपनी थाली से मिठाई का एक टुकड़ा उठा कर मुँह में ज़रूर डाल लेती हूँ, लेकिन मैंने देखा है कि कइयों की मुश्किल यह होती है कि वे थाली की मिर्च खाकर 'सी' 'सी' करते आँखों से आँसू बहाते बैठे रह जाते हैं, मिठाई की डली मुँह में डालना ही भूल जाते हैं...।

पादरी के साथ-साथ घर के सभी सदस्यों की आँखें बहती गयीं। वृद्धा की हथेली अपनी हथेली में भर कर पादरी सिर झुकाये, ध्यानमग्न बैठे रहे मानों जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई को निरन्तर चुपचाप अपने अन्दर समेटे जा रहे हों।

माँ धीरे-धीरे अपनों से बोल उठीं—यही वजह है मेरे बच्चो कि इस घातक बीमारी में भी ख़ुशी ने मेरा पल्ला कभी नहीं छोड़ा। मेरी इस थाली पर पुरसा खाना अगर ख़तम हो रहा है, अगर उसे धो-पोंछ कर रख देने का वक़्त आ गया है तो इसमें बौखलाने की क्या ज़रूरत है भला? भगवान् मेरे नये व्यञ्जनों की दूसरी थाली परोस कर तैयार कर रहे हैं; बस, इत्ती-सी बात हम समझ जायें और हर पल अपने-अपने छुरी-काँटे आने वाले भोज के लिए तैयार रखें तो सामने ज़िन्दगी ही ज़िन्दगी पसरी पड़ी है। हाँ, ज़्यादातर लोग-बाग पुरानी थाली समटेने और ताज़ा पुरसी हुई थाली के बीच के अन्तराल को मृत्यु कहते हैं तो कहते रहें, लेकिन मेरा नज़रिया तो कुछ और ही है।

दो दिन बाद माँ हाथों में अपना छुरी-काँटा थामे, नये व्यञ्जनों का रसास्वादन करने निकल पड़ीं। चलते-चलते हममें से हर एक के हृदय में बो गयीं उनके नज़रिये से जीवन को देखने का वह बीज, साथ ही चुपके से हमारे कानों में फुसफुसा गयीं—इस बीज को ख़ूब सींचना और इसकी शीतल छाँव में बैठ कर तुम अपना भोजन ख़ूब प्रेम से खाना और हमेशा

याद रखना कि हर आने वाले पल की दावत गुज़रे हुए पल की दावत से कहीं ज़्यादा लज़्ज़तदार होगी।

कहानी यहीं ख़तम हो गयी, लेकिन क्या इसे ख़तम होना कहेंगे या कहेंगे शुरुआत?

साथ ही मेरे ज़ेहन में यह शेर गूँज उठा—

ज़िन्दगी क्या है अनासिर का ज़ुहूरे तरतीब
मौत क्या है इन्हीं अजज़ां का परीशां होना।

यानी, जीवन क्या है—पञ्च तत्त्वों का सिमटाव, और मृत्यु क्या है —इन्हीं तत्त्वों का बिखराव।

सिमटाव-बिखराव, बिखराव-सिमटाव—कहाँ है इसके बीच में कहीं भी पूर्णविराम??

—वन्दना

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

अधिष्ठाता : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनूं
श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनूं (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमां के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगाकर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :

पंकज बगड़िया
श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर
मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला
पो०-झुंझुनूं—३३३००१ (राजस्थान)
टेलीफोन—(०१५९२) २३५६१५
टेलीफैक्स—२३७४२८
e-mail: sadlecjjn@rediffmail.com
URL: WWW.sadlec.org

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

Date of Publication: 1st December 2018
Rs. 15.00 (Monthly)

A school by The Vatika Group vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 4. My son's journey with this school started 5 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 4

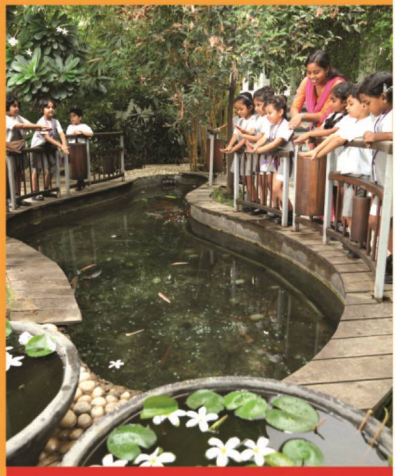

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2018-19

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 onwards

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gurugram
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gurugram
+91 124 4681600, +91 9821786363